नव भारत
के
नवीन अध्यापक

लेखक

आर० आर० कुमरिया

एम. ए., पी. इ. एस.

यूनिवर्सिटी पब्लिशर्ज़ रजिस्टर्ड

रेलवे रोड — जालन्धर शहर

प्रथम संस्करण १९५१ मूल्य २)

प्रस्तावना

आज प्रत्येक व्यक्ति प्रायः यह विचार सुनता रहता है कि शिक्षक के व्यक्तित्व के मुकाबले में शिक्षण विधियां तुच्छ हैं। ऐसा कहने वाले व्यक्ति से प्रश्न किया जाये तो वह प्रायः इस विश्वास को प्रकट करेगा कि "अध्यापक जन्म से होता है न कि बनाया जाता है और इस लिए शिक्षा मनोविज्ञान तथा शिक्षण विधियों के शिक्षण के लिए किया गया परिश्रम और अनुसन्धान अनुचित है।" इस प्रकार की विचार धारा इस सत्य से शून्य है कि अध्यापक का चरित्र और उसकी शिक्षण विधि सर्वथा अभिन्न हैं और दोनों ही अध्यापक की सफलता के लिए महत्वशाली हैं। इसके अतिरिक्त एक श्रेष्ठ व्यक्तित्व जन्म से ही किसी को उपहार रूप में नहीं मिलता प्रत्युत इस व्यक्तित्व का विकास तो निश्चित रूप से अपने प्रयत्नों से होता है।

इस पुस्तक के लेखक महोदय इस सिद्धान्त को पूरी तरह समझते हैं। इन्होंने उन लोगों को कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण सन्देश दिया है जो हमारे स्कूलों में शिक्षा के गौरव के उत्तरदायी हैं। शिक्षण विधि और पाठ्यक्रम में सुधार की आवश्यकता को कम न करते हुए वे यह सत्य लिखते हैं कि केवल वही अध्यापक उन्नत शिक्षा के शिक्षण नियमों और विधियों को उचित रूप से प्रयुक्त कर सकता है जिसने बालकों, युवकों और अपने प्रति व्यवहार में एक आन्तरिक परिवर्तन का अनुभव कर लिया है। यह आन्तरिक परिवर्तन केवल प्रयत्न और त्याग से ही प्राप्त हो सकता है।

यह पुस्तक अध्यापक के लिए आत्मबोध और आत्मनियंत्रण के ज्ञान के लिए एक मार्ग प्रदर्शक है। श्री कुमरिया, जो गवर्नमैंट ट्रेनिंग कालेज लाहौर में मनोविज्ञान के अध्यापक हैं, अपने विषय

के योग्य विद्वान होने के अतिरिक्त अनुभवी होने के कारण ऐसे मार्ग प्रदर्शन के सर्वथा योग्य हैं। वे आधुनिक मनोविज्ञान के विद्यार्थी हैं और उन्होंने किसी विशेष विचार धारा तक अपने आप को सीमित नहीं रखा। यद्यपि फ्राइड और मनोविश्लेषकों का उन पर विशेष प्रभाव है किन्तु वे किसी एक का पूर्णतया अनुकरण नहीं करते। इन्होंने उनके सिद्धान्तों तथा प्रस्तावों का, जो भारतीय स्कूलों के अध्यापकों की समस्याओं के लिए उपयोगी हैं, सार प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने मानसिक स्वास्थ्य के सम्पूर्ण विषय पर प्रकाश डालने का प्रयत्न नहीं किया किन्तु चरित्र विकास के कुछ ऐसे रूपों पर स्पष्ट विवेचना की है जिन के विषय में अध्यापकों और प्रबन्धकों को क्रियात्मक मार्ग-प्रदर्शन, जैसा कि श्री कुमरिया जानते हैं, अत्यन्त आवश्यक है।

लेखक महाशय उत्सुक और साहसी हैं और वे लोग भी जो इनके विचारों से पूर्णतया सहमत नहीं, उन पर मनन करने से लाभ उठायेंगे।

अध्यापकों और प्रबन्धकों को इस पुस्तक के अध्ययन से बड़ा लाभ होगा। मैं एक माता होने के नाते यह प्रस्ताव करने का साहस करती हूं कि माता पिता भी इस पुस्तक के स्वाध्याय से बहुत कुछ प्राप्त कर सकेंगे।

आइरिनो मेसन हारपर

मोगा

ग्रामीण अध्यापक ट्रेनिंग स्कूल, मोगा

भूमिका

प्रत्येक व्यक्ति जो कोई भी पुस्तक लिखता है, इस विचार से लिखता है कि इसकी महान आवश्यकता है। मैं भी इस छोटी सी पुस्तिका के प्रस्तुत करने में, उन व्यक्तियों के लिए जो पहले से ही मेरे व्यवसाय से सम्बन्ध रखते हैं अथवा इस में प्रवेश करने के इच्छुक हैं, ऐसे ही थोड़े से गर्व का अनुभव करता हूं।

"हम अब तक विधियों के सम्बन्ध में चिन्तित रहे हैं किन्तु शिक्षकों के सम्बन्ध में हम ने बहुत कम सोचा है" मैं अनुभव करता हूं कि अब समय आ गया है कि हम अध्यापन कार्य के लिए एक व्यक्ति की अनुरूपता और योग्यता का परीक्षण करें। हमें न केवल उसकी बौद्धिक योग्यता का परीक्षण करना होगा प्रत्युत चारित्रिक और आध्यात्मिक अनुरूपता का भी ध्यान रखना होगा।

एक अध्यापक का चरित्र वैसा ही महत्वपूर्ण है जैसा कि उस की बुद्धि, प्रत्युत उससे भी अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि छात्रों पर उस का प्रभाव अगोचर, गहरा और स्थायी होता है। एक जाति के व्यक्तित्व को दो व्यक्ति बनाते और बिगाड़ते हैं। वे हैं माता-पिता और अध्यापक। दोनों को अपना उत्तरदायित्व संभालने से पूर्व एक विशेष प्रकार का मन प्राप्त करना होगा और नया जीवन लेना होगा। जिस प्रकार के मानसिक रूप की प्राप्ति एक अध्यापक को करनी चाहिए उसकी विवेचना इस पुस्तक में की गई है। कुछ आजन्म दोषों को छोड़ कर प्रत्येक अध्यापक थोड़े से प्रयत्न से अपने आप को सुधार सकता है। इस सुधार के लिए आत्म ज्ञान सब से पहला कदम है। मुझे यह पूर्ण विश्वास है कि जो भी व्यक्ति इस पुस्तक का आरम्भ से अन्त तक अध्ययन करेगा वह निश्चय ही अपने मन के व्यापार से परिचित हो जायेगा और अपने कायाकल्प के लिए उद्यत हो जायेगा।

लाहौर आर-आर-कुमरिया

यह पुस्तक गवर्नमैंट ट्रेनिंग कालेज जालन्धर के शिक्षा-मनोविज्ञान के मुख्याध्यापक श्री आर-आर-कुमरिया एम. ए., की प्रसिद्ध पुस्तक TEACHER'S MENTAL EQUIPMENT का अनुवाद है। यह अनुवाद श्री रामचन्द्र जावेद बी. ए., साहित्य रत्न, हिन्दी प्रभाकर ने उनकी देख रेख में किया। यह अनुवाद १९५० के पुनरीक्षित संस्करण का है।

प्रकाशक

विषय सूची

हम ऐसे युग में पहुंच गये हैं जब कि संसार की प्रत्येक वस्तु शिक्षाप्रद है किन्तु प्राथमिक अध्यापकों को पहले अपने आप को शिक्षित करना होगा।

फ्रेडरिक नीटशे

पहला अध्याय

शिक्षा क्या है ?

अपने देश के एक ग्रामीण बढ़ई के चित्र को अपनी मानसिक चक्षुओं के सम्मुख रखिये। वह किसानों के लिए हल बनाता है और उन के कुओं के लिए रहट और उन के बालकों के लिए सादे खिलौने बनाता है; वह अपने ग्रामीण साथियों के लिए उन के घरों के द्वार बना कर तथा अन्य कई उपयोगी वस्तुएं बना कर अत्यन्त उपयोगी कार्य करता है; वह अच्छी और बुरी लकड़ी में भेद कर सकता है और वह यह भी जानता है कि कौन से यंत्र अच्छे हैं। संक्षेप में उसे कुछ कौशल और ज्ञान होता है जिस के द्वारा वह अपना निर्वाह करता रहता है। न केवल यह प्रत्युत निरक्षर होने पर भी अपने ग्राम के विविध व्यक्तियों के प्रति अपनी सम्मति रखता है; विश्व के सम्बन्ध में भी उस के कुछ न कुछ अपने आदर्श और विश्वास होते हैं। वह अपने इष्ट देव की एक विशेष रूप से आराधना और पूजा करता है। उस का आचरण कुछ चारित्रिक आदर्शों पर निर्भर होता है। वह झूठी गवाही देना स्वीकार नहीं करता; वह चोरी नहीं करता; वह अपने पड़ोसियों की दुखित अवस्था में सहायता के लिये पहुंचता है; वह अच्छा गा लेता है और यदा कदा लोकगीतों से अपने मित्रों को आनन्दित भी करता रहता है। दूसरे शब्दों में वह ग्रामीण बढ़ई कुछ अपना व्यवसाय सम्बन्धी कौशल, कुछ चारित्रिक

आदर्श और कुछ आत्मतत्वज्ञान, चाहे वह अपरिपक्व क्यों न हो, रखता ही है। उस का मज़हब भी है और वह किसी न किसी सम्प्रदाय से भी सम्बन्ध रखता है। इस के अतिरिक्त वह कुछ कला सम्पन्न भी है और अपनी परिस्थितियों का झूठा सच्चा भौगोलिक तथा ऐतिहासिक कुछ न कुछ ज्ञान भी रखता है।

जब वह पैदा हुआ था तो उस के पास इन उपरिलिखित वस्तुओं में से एक भी न थी। उस ने इन वस्तुओं को कुछ निश्चित सामाजिक साधनों अथवा शिक्षा सम्बन्धी प्रभावकों से प्राप्त किया। इन प्रभावकों में उस के शिक्षक, जिस के पास वह बढ़ई के कार्य में कौशल और ज्ञानप्राप्ति के लिए शिष्य रहा, उस के माता पिता, ग्राम के पुरोहित और आस पास के कुछ बड़े बूढ़े लोगों का नाम लिया जा सकता है। इन प्रभावकों ने उस के विकास को एक निश्चित रीति नीति से परिवर्तित किया है। यदि वह उत्पन्न होते ही जंगल में फैंक दिया जाता और वहां के वासियों से पालित पोषित होता तो बड़ा होने पर, जैसा कि हम काल्पनिक कथाओं में पढ़ते आए हैं, अपनी वर्तमान अवस्था से भिन्न होता। वह दूसरे देशों के बढ़इयों से अपने व्यवसाय-सम्बन्धी ज्ञान, कौशल तथा अपने व्यवहार तथा जीवनलक्ष्य में भिन्न है। उसकी अपनी विचित्र परिस्थितियों ने उसे एक निश्चित सा रूप दे दिया है। निस्सन्देह इन्हीं परिस्थितियों ने ही उसे इस रीति से शिक्षित किया है। इस लिए एक अपरिपक्व जीव को उस के अपने समाज के सामाजिक और चारित्रिक आदर्शों तथा ज्ञान-भण्डार के अनुकूल परिवर्तित अथवा रूपान्तरित करने का नाम शिक्षा है। प्रत्येक व्यक्ति एक निश्चित सभा और समाज में पलता और फलता फूलता है, जो उसे शिक्षित करता है अथवा भिन्न भिन्न सामाजिक साधनों द्वारा

एक निश्चित रूप देता है। शिक्षा एक निश्चित योजना के अनुसार होती है। यह निश्चित योजना रीति रिवाजों और प्रथाओं के रूप में विद्यमान रहती है, और समाज के जाने बिना काम करती रहती है। न तो सामाजिक साधन इस बात के आलोचक हैं कि वे एक व्यक्ति के साथ क्या कर रहे हैं और न ही वह व्यक्ति इस बात को जानता है कि उस के साथ क्या हो रहा है? साधन बरते जा रहे हैं और आदर्शों की पूर्ति प्रायः अज्ञात रूप में ही हो रही है। प्रत्येक पीढ़ी के लोग अपना स्थान लेने वाली संतति को वे साधन और आदर्श देते रहते हैं जिन के अनुसार एक व्यक्ति को ढालना है। इस प्रकार शिक्षा की रीति और पद्धति प्रत्येक व्यक्ति को कुछ व्यवसाय सम्बन्धी कौशल, कुछ सांसारिक ज्ञान और जीवन का कुछ आदर्श सिखाते हुए एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चलती रहती है।

जब हम परिस्थितियों द्वारा अपने आदर्शों अथवा उन के पूर्ति साधनों या दोनों के परिवर्तन के लिए बाध्य हो जाते हैं तब हमें शिक्षा पद्धति का बोध होता है। अभी अभी जर्मनी और रूस ने हमें शिक्षा पद्धति से सचेत किया है। शक्ति की तीव्र लालसा तथा यूरोप और शेष सम्पूर्ण संसार पर विजय प्राप्ति की भावना ने हिटलर पर अधिकार कर लिया। उस ने इसी भावना और विचार को जर्मनी का मुख्य उद्देश्य समझ लिया किन्तु यह उद्देश्य तभी पूर्ण हो सकता था जब कि जर्मनी का एक एक निवासी सैनिक बन जाता। परिणाम स्वरूप जिस समय ही हिटलर को अधिकार मिले उसने संसार विजय की कामना से प्रेरित हो कर प्रत्येक जर्मन युवा स्त्री और पुरुष को एक सैनिक के रूप में परिवर्तित करने के लिए कई साधनों को संगठित किया। सैनिक बनने की यह शिक्षा जर्मन को घर, शिक्षणालय, रेडियो, समाचार पत्रों और व्याख्यानों द्वारा

एक साथ दी गई। सभी प्रकार की शिक्षाओं की भाँति जर्मनों को एक निश्चित रूप देने के लिए नाज़ी शिक्षा भी एक निश्चित योजना अथवा कल्पना थी। यह योजना अपने पीछे वह आदर्श रखती थी जिसे हिटलर ने जर्मनी का परम उद्देश्य निश्चित किया था। इसी प्रकार स्टालन और उस के साथियों ने अपनी जनता के सम्मुख जीवन का एक निश्चित आदर्श प्रस्तुत किया और उसी आदर्श के अनुसार शिक्षा साधनों द्वारा उन्हें वैसा रूप देना आरम्भ किया। भारत ने अपने सम्मुख एक सार्वजनिक समाज और असाम्प्रदायिक राष्ट्र बनने का उद्देश्य रख लिया है। भारत के प्रत्येक बालक का मानसिक ढांचा और आचार व्यवहार शिक्षण विधियों द्वारा एक सार्वजनिक नागरिक का बनाया जायेगा। संक्षेप में शिक्षा एक व्यक्ति को निश्चित रूप देने के लिए एक योजना है। और यह निश्चित रूप उन आदर्शों पर निर्भर होता है जिन्हें कि उस सामाज ने, जिस में वह व्यक्ति रहता है, स्वीकार कर रखा है।

शिक्षा का इतना स्पष्ट लक्षण करने के पश्चात शिक्षा और साक्षरता में अन्तर स्पष्ट है। लिखना और पढ़ना तो साधन हैं जिन से एक व्यक्ति कई प्रकार से अपने आप को उन्नत कर सकता है। किन्तु इन साधनों के बिना भी एक व्यक्ति शिक्षित कहा जा सकता है। एक साधारण व्यक्ति शिक्षा और साक्षरता में कोई अन्तर नहीं समझता। उस की दृष्टि में केवल वही व्यक्ति शिक्षित है, जो स्कूल में रह कर लिखने और पढ़ने में प्रवीण हो गया है। निस्सन्देह ऐसा समझने वाले व्यक्ति शिक्षा के क्षेत्र को संकुचित कर देते हैं और उस के विस्तृत रूप को जानते ही नहीं।

शिक्षा का उद्देश्य

शिक्षा का अर्थ समझ लेने के पश्चात हम "शिक्षा का उद्देश्य क्या है?" इस कठिन प्रश्न की ओर आते हैं। शिक्षा का उद्देश्य जानने का अभिप्राय जीवन का उद्देश्य जानना है। यदि हम इस प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं कि हम ने किस लिए जीना है तो निस्सन्देह हम इस प्रश्न का उत्तर भी दे सकते हैं कि शिक्षा का क्या उद्देश्य है।

सर्व प्रथम हम शारीरिक और मानसिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए जीते हैं। दूसरे स्थान पर हम सामाजिक और चारित्रिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए जीते हैं। कुछ सभा समाजों के व्यक्ति इस संसार से परे के उद्देश्यों के लिए भी जीते हैं। वे अपने आप को इस प्रकार से शिक्षित तथा अनुशासित करने का प्रयत्न करते हैं कि जिस से वे स्वर्ग में अपना स्थान बना सकें अथवा अपनी जीवन लीला इस प्रकार से समाप्त कर सकें कि उन्हें निर्वाण अथवा मोक्ष अवस्था प्राप्त हो। हम यहां ऐसे स्वार्थी और अभागे पुरुषों का वर्णन नहीं करेंगे। क्योंकि हमारा सम्बन्ध केवल उन लोगों से है जो सांसारिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जीते हैं।

हम कुछ स्वाभाविक प्रेरक शक्तियां ले कर उत्पन्न हुए हैं जिन की सन्तुष्टि हमारा प्रथम कर्तव्य है। इन स्वाभाविक प्रेरणाओं में से आर्थिक प्रेरणा मुख्य है। हम में यह प्रेरणा आहार, कपड़े और आच्छादन प्राप्ति के लिए है। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि जो इस प्रेरणा के सन्तोष के लिए प्रत्येक व्यक्ति को समर्थ बना सके। दूसरे शब्दों में शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति को इतना कौशल और इतना ज्ञान अवश्य प्रदान करे जिस से वह अपनी आजीविका कमा सके। उत्पादन, शिशुरक्षण तथा काम प्रवृत्ति आर्थिक प्रेरणा से

दूसरे स्थान पर हैं। शिक्षा हमें इस योग्य बना सके कि हम जीवन की संशोधित पद्धतियों द्वारा अपनी कौम को ऊंचा उठा सकें; स्वास्थ्यकर विधियों द्वारा अपनी काम प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करने और अत्युत्तम विधि से अपनी सन्तान के पालन योग्य बन सकें। हम में अन्य कई प्रकार की स्वाभाविक प्रेरणायें हैं जिन के विषय में हम अगले अध्याय में कुछ पढ़ेंगे और जिन की सन्तुष्टि अत्यावश्यक है। एक स्थिर धारणा वाला व्यक्ति बनने के लिए इन प्रेरणाओं का उचित सन्तोष और इन का अधिकृत न होना अत्यावश्यक है। किसी व्यक्ति का किसी एक प्रेरणा को असन्तुष्ट रखना अथवा किसी एक से अधिकृत होना अथवा विजित रहना उस की मानसिक व्यवस्था को अस्वस्थ कर देता है। निस्सन्देह शिक्षा ऐसी होनी चाहिऐ जो हमें शारीरिक और मानसिक रूप में इस योग्य बनाये कि हम उचित विधि से अपनी सम्पूर्ण प्रेरणाओं को सन्तुष्ट कर सकें।

सामाजिक अथवा संसर्गज प्रेरणा का तो यहां विशेष रूप से वर्णन करना है। यह प्रेरणा हमें एक दूसरे के समीप लाती है। हम मनुष्य सामाजिक प्राणी हैं। हम एक दूसरे के साथ रहने की तीव्र इच्छा रखते हैं। हम एक दूसरे के प्रभावों में विकसित होते हैं। हम अपने समाज के रीति रिवाज और चारित्रिक तथा धार्मिक आदर्शों को अपना लेते हैं। कोई भी व्यक्ति अपने आप को उस समाज से पूर्णतया अलग नहीं रख सकता जो कि अपने सभी व्यक्तियों के हित के लिए कई प्रकार के बलिदानों की आशा रखता है। जब एक व्यक्ति प्रसन्नता से उन बलिदानों का करना स्वीकार कर लेता है जिन की कि आशा उस का समाज उस से रखता है तो वह निश्चय ही मनुष्य बन जाता है। एक वास्तविक मनुष्य सदा दूसरों के हित चिन्तन में रत रहता है। जितना ही उसे इस कार्य

से अधिक प्रेम होगा उतना ही मनुष्यत्व का अंश उस में अधिक होगा। एक वास्तविक मनुष्य सहयोगी होता है। वह सर्वदा दूसरे के दृष्टिकोण पर विचार करने के लिए उद्यत रहता है; वह केवल अपने लिए नहीं जीता; वह दूसरों के लिए भी जीता है; वह दूसरों की भलाई और खुशी का ध्यान रखता है। मनुष्य के दुःखों का मौलिक कारण व्यक्तियों, समाजों और जातियों में अच्छे सम्बन्ध का अभाव ही तो है। यह झगड़े उस समय ही तो पैदा होते हैं जब कि व्यक्ति, सभा समाजें और जातियां दूसरे के हितों की अवहेलना करते हुए केवल अपने जीवन के लिए ही प्रयत्न करती हैं। मानव समाज के एक अविश्वसनीय छोटे से काल में अब तक दो घोर और भयंकर युद्ध हो चुके हैं। इन युद्धों का मुख्य कारण कुछ ऐसी जातियों की निरंकुश इच्छायें थीं जो केवल अपने लिए जीवित रहना चाहती थीं और जो अधिक से अधिक शक्ति और सम्पत्ति को अपने अधिकार में लेना चाहती थीं। किन्तु अब वह समय आ गया है जब कि सभी जातियों को इस मौलिक प्रश्न पर विचार करना होगा कि क्या उन में से प्रत्येक जाति दूसरी सभी जातियों के हितों और प्रसन्नताओं का उत्कट ध्यान रखने को उद्यत है अथवा नहीं? मनुष्य की मुक्ति इस प्रश्न के स्वीकार सूचक उत्तर में है।

मान लो कि यदि सभी जातियां एक दूसरे के सहयोग में रहने का निश्चय कर लें तब उन्हें इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपने एक एक व्यक्ति को शिक्षा द्वारा इस के लिए उद्यत करना होगा और मनुष्य बनाना होगा।

हमारे जीवन का उद्देश्य वैयक्तिक नहीं प्रत्युत मानव रूप से अपनी स्वाभाविक प्रेरणाओं की शान्ति है। हम कह चुके हैं कि मनुष्य दूसरों के लिए जीता है। उस में सामाजिक भावनायें तीव्र

होती हैं; उस का आचरण सत्य, न्याय और सेवा के पवित्र आदर्शों से शासित होता है। वह पराक्रमी होता है और उसे अपने ऊपर विश्वास होता है। वह स्वतंत्र और आत्मविश्वासी होता है। वह न केवल अपना विकास कभी समाप्त करता है, प्रत्युत अपनी सफलताओं का प्रयोग भी मनुष्य जाति की सेवा में करता है। निस्सन्देह शिक्षा द्वारा हमें ऐसे ही व्यक्ति पैदा करने हैं। संक्षेप में शिक्षा के दो उद्देश्य हैं। पहला यह कि शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्वाभाविक प्रेरणाओं के सन्तुष्ट करने के लिए स्वास्थ्य, निपुणता तथा कौशल प्रदान करे। दूसरा यह कि शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति को मनुष्य बना दे।

बीसवीं शताब्दी में ऐसे ही मनुष्य पैदा करने के लिए, जिन का वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं, कई प्रकार की शिक्षा सम्बन्धी योजनाओं के निर्माण पर विचार होता रहा है। उन सब योजनाओं को नवीन शिक्षा का नाम दिया गया है। हम यहां उन योजनाओं के कुछ मौलिक आदर्शों का वर्णन करते हैं। पहला यह कि बाल्यकाल एक व्यक्ति के जीवन का अत्यन्त महत्वपूर्ण काल है। पहले ही पांच छः वर्षों में प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व की स्थापना हो जाती है। वास्तव में बालक की शिक्षा तो उस दिन से ही आरम्भ हो जाती है जिस दिन कि वह उत्पन्न होता है। दूसरा यह कि व्यक्तित्व का विकास स्वतंत्र वातावरण में होता है। इस लिए प्रत्येक बालक के लिए स्वतंत्र वातावरण की उत्पत्ति अत्यावश्यक है। ताकि वह ऐसे वातावरण में माता पिता और अध्यापक पर आश्रित न रह कर अपने पांव पर खड़ा होना सीखे। और उसे आत्म प्रकाश का पूरा पूरा अवसर मिले। वह अपने आत्मविश्वास और उत्साह को अपने जीवन की कठिनाइयों के सफलता पूर्ण मुकाबले के लिए विकसित करे। तीसरा, वह सहयोगी कृत्यों द्वारा दूसरों की सहकारिता में जीना सीखे।

हमारी सम्मति में इन्ही तीन आदर्शों पर ही प्रत्येक स्कूल और प्रत्येक घर की स्थापना होनी चाहिए।

अध्यापक

नवीन शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अध्यापकों और माता पिता को छात्रों के प्रति नवीन भावनाओं को स्वीकार करना होगा। वे बालकों के शिक्षण की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेने से पूर्व अपने आप को नियमित करें। चूंकि यहां हमारा सम्बन्ध केवल अध्यापक से है इसलिए हम यहां पूर्व वर्णित शिक्षा के उद्देश्यों के अनुभव के लिए अध्यापक की मानसिक स्थिति और चारित्रिक योग्यता पर विवेचना करेंगे।

शिक्षण कार्य का आधार तीन स्तम्भों पर है। शिक्षक, शिष्य और शिक्षा। प्राचीन अध्यापक के लिए केवल अपने विषय का पण्डित होना ही आवश्यक था। इस के अनन्तर शिक्षक के लिए शिष्य के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान रखना भी आवश्यक समझा गया, किन्तु अब बीसवीं शताब्दी में शिक्षक के लिए शिक्षण जैसे महत्व पूर्ण उत्तर-दायित्व को संभालने से पूर्व अपने आप का ज्ञान भी आवश्यक समझा गया है। अध्यापक का व्यवसाय पूर्ववत पवित्र ही है किन्तु अब इस का उत्तरदायित्व कई गुना बढ़ गया है। अब शिक्षक का केवल अपने विषय में योग्य होना ही पर्याप्त नहीं प्रत्युत उस के प्रयत्नों को वे मार्ग भी दिखाने चाहिएं जिन के द्वारा वह ऐसा वातावरण पैदा कर सके जिस में कि एक छात्र निर्विघ्न रूप से मनुष्य बन सके। निस्सन्देह यह कार्य बड़ा कठिन है। डाल्टन योजना,

मौन्टिसरी पद्धति, प्रोजैक्ट (अनुसन्धान) पद्धति, बेसिक पद्धति तथा अन्य कई ऐसी ही शिक्षा पद्धतियां ऐसा वातावरण पैदा करने का लक्ष्य रखती हैं।

इस वातावरण में अध्यापक का स्थान अत्यन्त महत्व पूर्ण है। सर्व प्रथम उसे अपना यह भ्रम त्यागना होगा कि वह छात्र के व्यक्तित्व का निर्माता है। छात्र स्वयं अपने आप को बनाता है। अध्यापक का कार्य तो इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसे सुविधायें जुटाना है। अध्यापक ने तो केवल नेतृत्व, मार्ग प्रदर्शन और प्रेरणा करनी है। उस का कार्य केवल क्रूरता से शासन करना और आज्ञा पालन कराना नहीं। यह एक आदत है जो अध्यापक को स्वभावतः प्राप्त नहीं होती। उसे इस को प्रयत्न से सीखना और प्राप्त करना होगा अध्यापक के नेतृत्व और मार्ग प्रदर्शन के लिए उस के सम्मुख चारित्रिक आदर्शों का होना आवश्यक है। छात्रों में उन आदर्शों के प्रति प्रेरणा और श्रद्धा पैदा करने के लिए स्वयं अध्यापक को ऐसे आदर्शों को अपने जीवन में पर्याप्त मात्रा में क्रियात्मक रूप देना अत्यावश्यक है। जिस प्रकार स्मिथ महाशय ने लिखा है कि "जैसी प्रेरणा कोई दूसरों को करना चाहता है उसे पहले स्वयं वैसा बन कर दिखाना चाहिए और यदि कोई किसी न किसी उचित व्यवहार में मार्ग प्रदर्शन करना चाहता है तो उसे चाहिए कि पहले वह अपने आप को उस में आदर्श रूप से प्रस्तुत करे"। फ्राइड सिद्धान्त वादियों के अचेत मन और उस के कार्य रूप के सम्बन्ध में अन्वेषण ने हमें इस बात को स्वीकार करने के लिए बाधित कर दिया है कि अध्यापक की अपने व्यवसाय और अपने शिष्यों के प्रति भावना तथा व्यवहार का उस की देख रेख में विकसित होने वाले व्यक्तियों पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। छात्रों

से ऐसे पराश्रयी अध्यापक, जिस ने अस्थायी रूप से शिक्षक का व्यवसाय स्वीकार किया है अथवा जिस ने इस व्यवसाय को किसी अन्य व्यवसाय के स्वीकार करने के लिए बीच का स्टेशन (विश्राम स्थान) बनाया है अथवा इसे ऐसी आय का साधन समझा है कि जिसे वह अपने विवाह संस्कार के लिए बने हुए प्रवेश द्वारों के व्यर्थ अलङ्कार पर लगाना चाहता है, के आदेश का पालन होने की सम्भावना अब बहुत कम है। यह कहावत सर्वथा सत्य है कि ख़रबूज़ा ख़रबूज़े को देखकर रंग पकड़ता है। छात्रों में उत्साह का मंत्र फूंकने के लिए अध्यापक का उत्साह पूर्ण होना अत्यावश्यक है।

अध्यापक को सर्वप्रथम अपने कार्य के महत्व का अनुभव होना चाहिए। उसे यह भी ज्ञान होना चाहिए कि आज के छात्र कल जाति का रूप धारण करेंगे। घर और स्कूल ही दो बड़ी संस्थायें हैं जहां जाति की स्थापना होती है। भारत जैसे देश में जहां माताएं बहु संख्या में अनपढ़ हैं, अध्यापक का उत्तरदायित्व अत्यधिक है। और यह सत्य एक उत्साही अध्यापक की उत्साह-वृद्धि के लिए जिस का ध्येय जाति सेवा है, पर्याप्त है। और यह सत्य "कि अध्यापक का अपनी जाति के उत्थान में हाथ होता है" उस के व्यवसाय के गर्व को बढ़ाने वाला है। इस सत्य के ज्ञान से उस का सिर गर्व से उन्नत हो जाना चाहिए और यह ज्ञान उसे अपने कार्य में आत्मसमर्पण और हार्दिक परिश्रम का प्रेरक होना चाहिए। श्रीमती मौन्टिसरी ने एक स्थान पर लिखा है कि "मैं छात्रों को इस आशा से देखती हूँ कि ये हमें व्यर्थ जड़बुद्धि से, दुःखों से, वैयक्तिक, राजनीतिक और समाजिक अशान्ति से मुक्त करायेंगे।"

"एक प्रौढ़ व्यक्ति केवल परिस्थितियों का सुधार कर सकता है किन्तु एक बालक जीवमात्र का सुधार करता है। बालक पूर्णता और सुधार के लिए सर्वदा प्रयत्न शील है और प्रौढ़ व्यक्ति की पूर्णता और सुधार बालक पर निर्भर है। इस लिए हम बालकों पर आश्रित हैं और उन के आधीन हैं"।

यदि प्रत्येक अध्यापक उपरिलिखित वाक्यों के महत्व का अनुभव करने लग पड़े और इन वाक्यों में वर्णित भावों को हृदयङ्गत कर ले तो शिक्षा के उद्देश्य की पूर्ति में रुकावट ही क्या हो सकती है? किन्तु ऐसे विचारों के ग्रहण और पालन के लिए एक विशेष प्रकार के मन की आवश्यकता है। और इस प्रकार का मन बना लेना अध्यापक की पूर्ण सफलता है। हमारी सम्मति में अध्यापक ऐसा मन आत्म संयम से अवश्य प्राप्त कर सकता है।

आगे हम मन के ऐसे रूप के अध्ययन का प्रयत्न करेंगे जिस का होना प्रत्येक सच्चे अध्यापक के लिये आवश्यक है। हम अपने पाठकों के सम्मुख कुछ ऐसे अत्यन्त आवश्यक सत्य रखेंगे जिन का अनुसन्धान नवीन मनोविज्ञान ने अभी अभी किया है और जिन के अध्ययन से छात्र-अध्यापक सुगमता से अपने जीवन को नियमित कर सकेंगे। हम ने अपने सम्मुख वही उद्देश्य रखा है जिस का अनुसरण करते हुए स्पिनोज़ा महाशय ने कहा था कि "मेरा उद्देश्य मनुष्य मात्र के कृत्यों को समझना है, मेरा उद्देश्य किसी की हीनता का प्रकाश करना नहीं और न ही विलाप करना अथवा शाप देना है"।

दूसरा अध्याय

अध्यापक की सामग्री

पिछले अध्याय में हम ने लिखा है कि अध्यापक को अपने व्यवसाय के महत्व का अनुभव होना चाहिए। उसे अपने शिष्यों को बालक मात्र ही नहीं समझना चाहिए प्रत्युत ऐसे व्यक्ति समझना चाहिए, जिन्हों ने उस की देख रेख में फलना फूलना और विकसित होना है; और ऐसे कि जिन पर उस के देश का भविष्य निर्भर है, ऐसे जो कि उस के मार्ग प्रदर्शन और प्रेरणा की आशा रखते हैं; जिन का हितचिन्तन उस का मुख्य कार्य है और जिन के विकास के लिए उसे अपना अनन्य ध्यान निर्दिष्ट करना है। यदि कोई अन्य वस्तुएं उसे अपनी ओर आकर्षित कर रही हैं और इस महान कार्य को छुड़वा रही हैं तों उसे इस व्यवसाय में प्रविष्ट नहीं होना चाहिए। एक बार प्रविष्ट हो जाने पर यदि वह अन्य किसी व्यवसाय में भी प्रवृत्त रहता है तो वह निस्सन्देह अपने उद्देश्य से धोखा कर रहा है। निस्सन्देह राजनीति, वाणिज्य और व्यापार उस की ओर अनुग्रह के लिए चिल्ला रहे हैं और एक मोहिनी स्त्री की भाँति कई प्रकार के प्रलोभनों की ओर आकर्षित कर रहे हैं किन्तु एक सच्चा और देश भक्त अध्यापक निर्दयता से उन्हें अस्वीकार कर देगा और उन के मीठे आवाहन शब्दों को सुनने के लिए अपने कान बन्द कर देगा। इस लिए अध्यापक की प्रथम और अत्यन्त आवश्यक सामग्री है देश प्रेम की उत्कट भावना। उसे यह अनुभव करना चाहिए कि उसे ऐसे सुयोग्य युवक और युवतियां पैदा करनी हैं जो संसार की मंडी को मानपूर्ण अपना

सामान सौंप सकें। निश्चय ही यह भावना उसे इस योग्य बना देगी कि वह छात्रों की शिक्षा को अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य समझे।

दूसरी बात जिस का ज्ञान अध्यापक के लिए आवश्यक है यह है कि उस के विचारों और कृत्यों का उस के उन छात्रों पर, जिन को वह पढ़ाता है, प्रभाव पड़ता रहता है। इस लिए यदि वह योग्य व्यक्ति आगे भेजना चाहता है तो उसे स्वयं अच्छे विचार रखने चाहिएं और अच्छे कृत्य करने चाहिएं। सब से आवश्यक कार्य जो उसे करना चाहिए वह यह है कि उसे आन्तरिक रूपसे अपनी निश्चित चारित्रिक अवस्था बनानी चाहिए जो उस के कई प्रकार के ऐसे दोषों के उन्मूलन में सहायक सिद्ध होगी जो कि उस के शिष्यों के विकास में प्रतिबन्ध सिद्ध हो रहे हैं। आज के मनोवैज्ञानिक, नियंत्रण सम्बन्धी उन सब समस्याओं के लिए, जो आये दिन स्कूलों में पैदा होती रहती हैं और जो स्कूलों की अनुरूपता पर प्रभाव डालती हैं, अध्यापकों को ही दोषी समझते हैं। हमें इस बात से इनकार नहीं कि स्कूलों में दुःसाध्य छात्र भी होते हैं किन्तु हम जिस बात पर विशेष बल देना चाहते हैं वह यह है कि बहुधा अध्यापक का अपनी श्रेणी अथवा श्रेणी के कुछ छात्रों के प्रति ग़लत व्यवहार ही उस दुराचरण का कारण बनता है जो उस की श्रेणी अथवा उस के छात्र उस से करते हैं। इस शताब्दी में जब कि सम्पूर्ण विश्व के आकाश पर जनतंत्रता के विचार छाये हुए हैं और आत्म गौरव की भावनायें वृद्धि पर हैं, यह बात सर्वथा सत्य है कि अब पुराने मदरसों और पाठशालाओं का पुराना वातावरण नहीं रहा। आज अध्यापक को अपने छात्रों से केवल मात्र इस लिए कि वह उस का अध्यापक है असंदिग्ध आज्ञापालन की आशा नहीं रखनी

चाहिए। आज के छात्र इस बात के लिए उद्यत नहीं। निस्सन्देह यह दुःखदायक किन्तु स्थिर सत्य है। समय बदल गया है और मन भी बदल चुके हैं। वह अध्यापक जो सफल अध्यापक होने की निष्कपट और शुद्ध भावनायें रखता है, इस बदले हुए मनों का अवश्य अध्ययन करे और अपने आप को उस के अनुकूल बनाले। आज के स्कूलों के वे अध्यापक और मुख्याध्यापक जो अपनी आयु के चालीसवें वर्ष में हैं, या इस से अधिक आयु के हैं, प्रायः देखते रहते हैं कि जब उनके स्कूलों में छात्र वर्ग हड़ताल कर देते हैं तो वे छोटे २ बालक किस निर्भीकता और स्वतंत्रता से अपनी मांगों को ठीक सिद्ध करते हैं। उन अध्यापकों में से कुछ एक के लिए तो ऐसी अवस्थाओं का विचार मात्र ही असहनीय है और कई इन छोटे छोटे दानवों को तुरन्त दैवी रूप देने का मंत्र सोचने लग पड़ते हैं। किन्तु वे नहीं जानते कि अब यह धारणा उन से बदलने की नहीं। यदि आज के अध्यापक अपनी आज्ञा के पालन और मान के अब भी इच्छुक हैं तो वे अपने शिष्यों को अध्यापक और शिष्य रूप में अपनाने के बदले अन्य किसी रूप में अपनायें। वे आज के युवक और बालक के मन का पूर्णतया अध्ययन करें और उसे समझें। इस लिए आधुनिक मनोविज्ञान और उन सामाजिक परिवर्तनों का, जो अभी अभी हुए हैं, उत्कट अध्ययन अध्यापक के लिए दूसरी आवश्यक सामग्री है।

दूसरे से व्यवहार ज्ञान के लिए मनोविज्ञान इस पुरानी कहावत को दुहराता है कि "चिकित्सिक पहले अपनी चिकित्सा कर"। दूसरे की मानसिक स्थिति के सम्यक ज्ञान के लिए अपने मन का ज्ञान अत्यावश्यक है। हमारा यह विश्वास है कि अध्यापक आत्म परीक्षण से कई प्रकार के गुप्त दोषों से मुक्त हो जायेगा जिस से

उसकी कई समस्यायें अपने आप हल हो जायेंगी । और तब वह समझेगा कि उस के अपने अन्दर का राक्षस ही उस की उन कठिनाइयों का कारण था जिन का दोष वह अपने शिष्यों पर थोप रहा था। मैटरलिंक महाशय ने एक वर्णनीय कथा लिखी है। वह लिखता है कि एक बलवान व्यक्ति बड़ी योजनायें बनाता रहता था जिन की पूर्ति के लिए वह भरसक प्रयत्न भी करता था किन्तु हर बार उसके मार्ग में कोई न कोई अड़चन अवश्य पैदा हो जाती थी । सोचते सोचते वह इस परिणाम पर पहुंचा कि उस का कोई गुप्त शत्रु है जो उस की योजनाओं को पूर्ण नहीं होने देता। उस ने अपने इस शत्रु के नाश का निर्णय कर लिया। एक दिन वह व्यक्ति अपने शत्रु से मिला। उस ने मुख पर पर्दा किया हुआ था। इस ने उसे ललकारा कि मैं तुम्हें मारना चाहता हूं। यदि शक्ति है तो अपने बचाव के लिए उद्यत हो जाओ। उस अपरिचित व्यक्ति ने जिसे वह अपना शत्रु समझ रहा था, अपनी तलवार निकाली और यह कहा कि "पहले देख कि मैं कौन हूं जिस के साथ तू लड़ना चाहता है"। यह कह कर उस ने अपना घूघंट उठा दिया । उस बलवान व्यक्ति ने देखा कि यह अपरिचित व्यक्ति उस से कोई भिन्न व्यक्ति नहीं था, प्रत्युत वह आप ही था।

इसी सम्बन्ध में यूनान के सुकरात और भारत के याज्ञवल्क्य महोदय के उपदेश हमारे सम्मुख आते हैं कि "हे मनुष्य ! अपने आप को पहचान"। इस शताब्दी में फ्राइड सिद्धान्त वादियों ने इस बात पर विशेष बल दिया है कि "प्रत्येक अध्यापक को अपने अचेत मन से अवश्य परिचित होना चाहिए । क्योंकि यही तो वह स्थान है जहां दानव मंत्रणा करते हैं" केवल वही व्यक्ति जो शिक्षित है और आन्तरिक रूप से स्वतंत्र है दूसरों को

यथोचित शिक्षा दे सकता है। जब हम अपनी अचेत अवस्था सम्बन्धी शिक्षा से शिक्षित हो जायेंगे तो प्रजा पीड़न, निर्दयता, स्वार्थ और छल आदि दोष संसार से मिट जायेंगे । यदि इन का प्रभाव रहा भी तो हम जान सकेंगे कि उन का वास्तविक रूप क्या है"। इस लिए आत्मनिरीक्षण अध्यापक के व्यवसाय की पवित्र दीक्षा है और तीसरी आवश्यक सामग्री है। आत्मनिरीक्षण से अध्यापक के दो कार्य सिद्ध होंगे—पहला यह कि इस से उस के कई वैयक्तिक दोष दूर हो जायेंगे जिस से वह अपने छात्रों को यथोचित रूप से नियंत्रित कर सकेगा। दूसरा यह कि इस से उस के मन में उन गुणों की प्राप्ति की भावना पैदा होगी जिस का कि उस के शिष्यों पर अत्युत्तम प्रभाव पड़ेगा।

वैयक्तिक दोषों के अतिरिक्त कुछ ऐसे दोष भी हैं जो मनुष्य मात्र में पाये जाते हैं। श्रीमती मौन्टिसरी ने ऐसे सात दोष गिनाये हैं और उन्हें "मानव दोष" का नाम दिया है। वे दोष ये हैं:— अहङ्कार, लोभ, क्रोध, आलस्य, काम, लोलुपता और ईर्षा। उन के विचार में ये दोष शिक्षक और शिष्य में अन्तर पैदा कर देते हैं। प्रत्येक अच्छा अध्यापक जो अपनी बुद्धि की सफलता देखने का इच्छुक है किसी शिक्षा संस्था के पवित्र द्वार में प्रविष्ट होने से पूर्व इन दोषों से अवश्य मुक्ति पा ले। इस के अतिरिक्त श्रीमती जी लिखती हैं कि "मैं एक अध्यापक के लिए अन्तः साधना पर विशेष बल देना चाहती हूं। अध्यापक एक नियम अथवा क्रम से अपने हृदय में अवश्य प्रविष्ट हो। इस से उसे अपने कुछ ऐसे स्पष्ट दोषों का बोध होगा जो उस के और उस के शिष्यों के व्यवहार में प्रतिबन्ध बनते हैं।"

इन वाक्यों में "नियम" अथवा "क्रम" शब्द बड़ा विचारणीय

है। इस का अभिप्राय यह है कि अपने हृदय में प्रवेश के लिए नियम अथवा क्रम है। हृदयभूमि गूढ़ रहस्यों की भूमि है। यहां कुछ घूंघट और कुछ पर्दे हैं जो असावधान व्यक्ति को धोखा देते हैं। अदीक्षित और असंस्कृत व्यक्ति उन में से बिना लाभ प्राप्ति के बाहिर निकल आते हैं। इसी लिए श्रीमती मौन्टिसरी ने लिखा है कि "यदि हम अपने उन दोषों से परिचित होना चाहते हैं जो पूर्व ही हमारी चेतना में गहरी जड़ पकड़ चुके हैं तो हमें सहायता और शिक्षण की आवश्यकता है। इस लिए छोटे बालकों का अध्यापक होने के लिए शिक्षण, मार्ग प्रदर्शन और साधना की आवश्यकता है।"

हम फ्राइड, एडलर, युंग और उन के साथी कार्यकर्ताओं के आभारी हैं जिन्हों ने एक नया मार्ग दिखाया है और मनुष्य के उन गुप्त सोतों का परिचय कराया है जहां तक कि हमारी पहुंच सम्भव है। हम यह नहीं कह सकते कि वे अपने प्रयत्नों को चरम सीमा तक पहुंच चुके हैं किन्तु इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि उन्हों ने काम चलाने के लिए पूरी सूचना दी है। मानसिक परीक्षण और वैयक्तिक मनोविज्ञान की विधियां मनोविज्ञान शास्त्र के इतिहास में सीमा चिह्न हैं। हम सब मनुष्यों को, विशेषतः अध्यापकों को, इन विधियों का विशेष रूप से प्रयोग करना चाहिए। उन सात दोषों का, जिन की गणना ऊपर की गई है, एक अध्यापक के हृदय से लोप होना आवश्यक है। यही उस की अध्यात्मिक साधना है और यही अन्तराभ्यास है जहां से उसके मानसिक अनुशासन का आरम्भ और जहां पर उसका अन्त भी होता है। अध्यापक कह सकते हैं कि यह सब कुछ हमारे लिए ही क्यों आवश्यक है ? हमारा उत्तर यह है कि आप ही तो जाति मार्ग प्रदर्शक नेता हैं। आप का व्यवहार ही तो आप

की अनुकरण करनेवाली जाति पर भारी प्रभाव डालता है। आलस्य पूर्णता और मलिनता से आप आधा युद्ध हार जायेंगे। निश्चय ही आप और केवल मात्र आप अध्यापक ही तो हैं जिन की ओर मनुष्य मात्र अपने दुःख निवारण के लिए देख रहा है। आप का स्थान, यदि आप जान सकें, तो अद्वितीय है। महात्मा बुद्ध, महात्मा ईसा और महात्मा गान्धी तथा ऐसा ही देदीप्यमान समूह आप की श्रेणी से तो ही सम्बन्ध रखता है। उन्हों ने हम सब को मनुष्यता का पाठ पढ़ाया है। उन्हों ने हमें सत्य, शिव और सुन्दरता का मार्ग दिखाया है। स्मरण रखें कि आप और आपका व्यवसाय उन के आदर्शों का प्रतिनिधि है। क्या फिर भी आप अन्तः साधना के लिए उद्यत नहीं ?

तीसरा अध्याय

मौलिक सहज प्रवृत्तियां

एडलर महोदय का कथन है "स्कूल कुटुम्ब का विस्तृत रूप है, और शिक्षक माता की न्याईं मनुष्य मात्र के भविष्य का संरक्षक है"। प्रत्येक अध्यापक इस कथन पर पुनः पुनः विचार करे और उस समय तक करता रहे जब तक कि इस कथन में वर्णित भावना का उस की नस नस में संचार न हो जाये। यदि वास्तव में एक शिक्षक यह अनुभव करने लग पड़े कि अपनी जाति के उत्थान और बनाने में उस का भी कोई भाग है तो निस्सन्देह वे सभी प्रतिबन्ध, जो उस के मार्ग में प्रायः आते रहते हैं, अपने आप लुप्त हो जायें। वह वैयक्तिक अनुशासन की आवश्यकता का अनुभव करने लग पड़ेगा। और इस आवश्यकता की पूर्णतया प्रतीति अथवा निश्चय करने के पश्चात् वह अनुशासन प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील भी हो जायेगा। क्योंकि मानसिक दृढ़ विश्वास का पूर्व होना आवश्यक है। वैयक्तिक अनुशासन के उपार्जन रूपी उद्देश्य के लिए मनुष्य को अपने मन के व्यापार अथवा चेष्टाओं का ज्ञान होना आवश्यक है। पिछली अर्द्ध शताब्दी में मनोविज्ञान ने बड़ी उन्नति की है। मनुष्य के मन का ज्ञान, जो हमारे सम्मुख रखा गया है, अत्यन्त विस्तृत है। अब हमें ज्ञात हुआ है कि जिस मन का हम ने नाम सुन रखा है, केवल वही मन ही नहीं प्रत्युत यहां तो एक और विस्तृत प्रदेश है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है और जिसे हम नहीं जानते। इसे अचेत मन कहते हैं और जिस मन को हम जानते हैं वह सचेत मन है। जब मैं यह वाक्य लिख रहा हूं तो मैं यह जानता हूं कि मैं वाक्य लिख

रहा हूं। जिस स्याही का मैं प्रयोग कर रहा हूं वह अच्छी है, मेरा कलम भी अच्छा लिख सकता है। यह एक सचेत मन का क्षेत्र है किन्तु एक और मन भी है जो स्वप्नों, विक्षिप्त मानसिक व्यवहारों, मानसिक चिन्ताओं में, जिनको हम समझ नहीं सकते, प्रकट होता है। यही अचेत मन है। सचेत मन अचेत मन के मुकाबले में तुच्छ है। सचेत मन का रूप और क्रियाएं साधारणतया अचेत मन द्वारा निर्दिष्ट होती हैं।

अचेत मन की शक्तियां बहुत हैं और कई प्रकार की हैं। फ्रांस के "कुई महोदय" का विश्वास है कि अचेत मन शरीर की क्रियाओं विशेषतः—नाड़ी मंडल पर अधिकार पूर्ण शासन करता है। कई प्रकार के शारीरिक रोग अचेत मन को विधिपूर्वक दिए गए संकेतों से ठीक हो सकते हैं। सैकड़ों रोगी स्त्री पुरुष और बच्चे लड़खड़ाते हुए "कुई" महोदय के द्वार पर आये और नीरोग हो कर वापिस गए।

अचेत मन एक अपूर्ण गणना यंत्र है। इस का यह विशेष गुण हिप्नाटिक अवस्था के उपरान्त विशेष रूप से देखा गया है। यदि एक मनुष्य को हिप्नाटिक अवस्था में यह संकेत किया जाये कि वह उठने के तीस मिनट और २५ सैकिण्ड पश्चात् अमुक दरवाज़े को खोले, ऐसा देखा गया है कि जब वह व्यक्ति अपनी इस अचेत अवस्था से उठता है तो यथाक्रम अपना कार्य आरम्भ कर देता है किन्तु पूरे ३० मिनट और २५ सैकिण्ड के पश्चात् वह जाकर उसी दरवाज़े को खोलता है। इस प्रकार वह उस संकेत को जो उसे अचेत अवस्था में दिया गया था क्रियात्मक रूप देने के लिए अपने अन्दर एक बलवती प्रेरणा का अनुभव करता है। इस विषय में रोचक बात यह है कि वह यह

नहीं जानता कि वह उस दरवाज़े को क्यों खोलना चाहता है ? यदि उसे इस विषय में प्रश्न किया जाये तो वह कई प्रकार की सत्याभास सी युक्तियां घड़ लेगा। किन्तु उसे यह स्मरण नहीं रहता कि उसे अचेत अवस्था में दरवाज़ा खोलने को कहा गया था। सब से आश्चर्यजनक बात तो यह है कि वह बिल्कुल ठीक समय पर आदेश पूर्ति करता है। कौन था जो इस अवकाश में गिनती कर रहा था ? निस्सन्देह वह अचेत मन था।

आप एक साधारण सा प्रयोग कर सकते हैं। सोने से पूर्व बिना किसी विशेष प्रयत्न के अपने मन को यह संकेत कर दें कि आप इतने बजे उठेंगे। उदाहरणतया आप छः बजे उठने का निश्चय कर लेते हैं। आप देखेंगे कि आप ठीक छः बजे उठेंगे। मुझे स्वयं प्रातः काल पांच बजे उठने और सैर को जाने का अभ्यास है। मैं ने देखा कि मेरी नींद प्रतिदिन निश्चित समय पर अलारम वाली घड़ी के आश्रय के बिना खुल जाती है। एक दिन प्रातः काल जागने से पूर्व मुझे स्वप्न आया। मैं ने स्वप्न में देखा कि मैं अपनी घड़ी को देख रहा हूं और घड़ी पर पौने छः बज रहे हैं। मैं मन में अपने आप को कोसने लगा कि आज मैं इतनी देर से क्यों जागा हूं। मैं इसी चिन्ता में ही चौंक पड़ा। मैं ने तुरन्त अपनी घड़ी को उठाया और यह जान कर विस्मित रह गया कि घड़ी पर ठीक पौने छः बज रहे हैं। निस्सन्देह उस प्रातः काल मैं देर से उठा और मेरे अचेत मन ने मुझे इस से ख़बरदार किया। अचेत मन अद्भुत गणना शक्ति के अतिरिक्त भविष्य वाणी की भी शक्ति रखता है। जैसा कि कई लोगों ने कई बार भावी घटनाएं स्वप्नों में देखी हैं। यद्यपि यह कोई सर्वमान्य अथवा सर्व साधारण घटनाएं नहीं होतीं और न ही हम यहां विश्वास से इस सम्बन्ध में कुछ कहना

चाहते हैं फिर भी कई सच्ची घटनाओं से यह सिद्ध हो गया है कि हमारा अचेत मन ऐसी शक्ति रखता है। कई लोग नींद में ही गणित के कठिन प्रश्न हल कर लेते हैं। टैलीपेथी (मानसिक संक्रमण) क्लेयरवायंस (आन्तरिक बल से गुप्त पदार्थों को देखने की शक्ति) जैसी निगूढ़, अथवा गुप्त अद्भुत घटनायें भी अचेत मन से सम्बन्ध रखती हैं।

हम पिछले अध्याय में लिख आये हैं कि जीवन, पदार्थों और मनुष्यों के प्रति व्यवहार की धारणा अचेत मन में ही बनती है। हमारे व्यवहार के मुख्य स्रोत यहां ही हैं। हम यहां इस अचेत मन का संक्षिप्त वर्णन करते हैं।

यह अचेत मन मनुष्य को कुछ तो पैतृक रूप में प्राप्त होता है और कुछ उसे स्वयं उपार्जित करना पड़ता है। पैतृक रूप से प्राप्त अचेत मन कुछ मौलिक सहज प्रवृत्तियां अथवा विशिष्ट कार्यों की ओर प्रेरणा करने वाली शक्तियां रखता है। इन को "इन्सटिन्क्ट" के नाम से पुकारते हैं। ये सचेत मन में इच्छा और उत्कंठा के रूप में प्रकट होती हैं। यही वह सम्पत्ति है जिस के साथ प्रत्येक मनुष्य अपना जीवन आरम्भ करता है। इन्हीं से ही उस की आदतें और भावनायें वनती हैं। मनुष्य की निम्नलिखित सहज प्रवृत्तियां विशेष रूप से वर्णनीय हैं :—

१. आर्थिक प्रवृत्ति अथवा ख़ुराक, वस्त्र, और आच्छादन प्राप्ति की प्रवृत्ति २. उत्पादन ३. शिशु रक्षण ४. मैथुन ५. जिह्वास्वाद ६. प्रभुता प्रवृत्ति अथवा दूसरों से अपने आप को ऊंचा रखने की प्रवृत्ति ७. आत्म नमन ८. सामूहिकता अथवा सामाजिकता ९. संचय १०. जिज्ञासा अथवा जानने

की प्रवृत्ति ११. विधायकता १२. युयुत्सा १३. पलायन १४. प्रार्थना।

प्रत्येक प्रवृत्ति मनुष्य को अन्दर से धकेलती है और एक विशेष पदार्थ की प्राप्ति और उसके सम्बंध में एक विशेष रूप के व्यवहार के लिए उत्साहित करती है अथवा ऐसे उत्साह का अनुभव पैदा करती है। चाहे वह पदार्थ सम्मुख न हो फिर भी उस की प्राप्ति की उत्कंठा हो सकती है। हम यहां यह वर्णन कर देना आवश्यक समझते हैं कि एक प्रवृत्ति के निरूपण के लिए उस की आन्तरिक उत्तेजना उस से सम्बन्ध रखने वाले पदार्थ से अधिक महत्व रखती है। इसी लिए तो एक भूखा व्यक्ति रोटी ढूंढता है। चाहे रोटी उस के सम्मुख न भी हो तो भी भूख उसे अवश्य लगती है। इस के अतिरिक्त जब एक व्यक्ति तृप्त है तो रोटी का सम्मुख होना उस की भूख को नहीं उकसा सकता। इसी प्रकार जब एक मनुष्य में काम भावना पैदा होती है तो उसे अपने विरोधी लिङ्ग के व्यक्ति अपनी ओर आकर्षित करते हैं। जितनी उत्सुकता अथवा उकसाहट अधिक होगी उतना ही आकर्षण बढ़ेगा। काम भावना की उकसाहट के लिए केवल विरोधी लिङ्ग (पुरुष के लिए स्त्री और स्त्री के लिए पुरुष) के व्यक्ति की उपस्थिति पर्याप्त नहीं है प्रत्युत प्रथम काम की पर्याप्त भावना का होना आवश्यक है। हमारा अभिप्राय यहां उस पदार्थ का महत्व कम करना नहीं जो किसी प्रवृत्ति को तीव्र करता है किन्तु हम यहां इस बात पर अवश्य ज़ोर देना चाहते हैं कि आन्तरिक उकसाहट प्रवृत्ति को क्रियाशील बनाने के लिए उस पदार्थ से अधिक महत्व रखती है।

प्रवृत्तियां प्रत्येक मनुष्य में पैतृक होती हैं। वे उस के स्वभाव का एक भाग होती हैं। उन का समूल नाश नहीं किया जा सकता।

वे सब मनुष्यों में हैं। हां इतना अवश्य है कि इन की शक्ति प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न भिन्न है। उदाहरणतया कुछ लोगों में संचय, कुछ में जिज्ञासा और कुछ में शिशुरक्षण की प्रवृत्ति आरम्भ से ही अधिक होती है।

मानव प्रवृत्तियों को आकार दिया जा सकता है। वे अपने सन्तुष्टि के मार्गों के निमित्त अपने आप को परिवर्तन अथवा सुधार के समर्पण कर देती हैं। प्रत्येक समाज ने इन प्रवृत्तियों के सन्तोष के अपने अपने ढंग तथा उपाय निश्चित कर रखे हैं। ये ढंग अथवा विधियां सामाजिक, आर्थिक, मज़हबी और जल वायु सम्बन्धी कारणों पर निर्भर हैं। उदाहरणतया भूख को लीजिए। भूख निवृत्ति की प्रवृत्ति अथवा अभिलाषा सब मनुष्यों में पाई जाती है। किन्तु इस की सन्तुष्टि के ढंग प्रत्येक जाति ने भिन्न भिन्न रूप में अपना रखे हैं। यदि कोई फ़रिश्ता खाने के समय आकाश से भिन्न भिन्न लोगों के खाने की भिन्न भिन्न विधियों को देखे तो वह असीम भिन्नता का अनुभव करेगा। जब वह कुछ लोगों को कील कांटों, कुछ एक को लकड़ी के टुकड़ों और अन्य को हाथों से भोजन खाता देखेगा तो उस के लिए यह एक कौतुक होगा। यदि हमारा यह फ़रिश्ता ललित कलाओं में भी कुछ निपुणता रखता हो तो वह कुछ लोगों को चारपाइयों पर बैठ कर उत्तम उत्तम भोजन खाते, कुछ एक को भूमि पर पलथी मार कर खाते, कुछ एक को भोजन के लिए नियत वस्त्रों में मेज़ों पर बैठ कर खाते और कुछ एक को द्वार द्वार पर रोटी के टुकड़े मांगता देख कर कितना आनन्दित होगा। किन्तु धरती माता के ये सब पुत्र एक ही स्वाभाविक प्रवृत्ति—भूख की सन्तुष्टि कर रहे हैं। इस से ज्ञात होता है कि एक सहज प्रवृत्ति की सन्तुष्टि की विधियां कई बाहरी कारणों पर आश्रित

हैं। जिस प्रकार से एक सहज प्रवृत्ति की सन्तुष्टि में एक प्रकार की प्रसन्नता का अनुभव होता है वैसे ही उसके सन्तोष क्रम में भी प्रसन्नता का अनुभव होता है। अतः भूख, उत्पादन, प्रभुता, आदि प्रवृत्तियों की सन्तुष्टि में चित्त को प्रसन्नता प्राप्त होती है। यह प्रसन्नता एक सहज प्रवृत्ति के कार्य को सुदृढ़ करने तथा उस की सफलता को सहज बनाने में एक प्राकृतिक साधन है।

अध्यापक अन्य सभी मनुष्यों की भाँति सभी मौलिक सहज प्रवृत्तियां रखता है। उन में से कुछ ऐसी प्रवृत्तियां हैं कि जिन का यदि सम्यक् रूप से शिक्षण और मार्ग प्रदर्शन न किया जाये तो वे उस के व्यावसायिक भविष्य को तबाही की ओर धकेल देंगी। उन सहज प्रवृत्तियों में प्रभुता, आत्म नमन, काम और संचय प्रवृत्तियों का नाम लिया जा सकता है। इन सहज प्रवृत्तियों का ग़लत शिक्षण उन सात दोषों का मूलकारण है जिन का वर्णन हम श्रीमती मौन्टिसरी के शब्दों में ऊपर कर चुके हैं।

चौथा अध्याय

प्रभुता प्रवृत्ति

अध्यापक को यह सीखना है कि उसे अपने किस दृष्टिकोण पर डटना या अड़ जाना है अथवा छात्र के कौन से दृष्टिकोण को स्वीकार कर लेना है और किस प्रकार इन दोनों विधियों का यथा-वसर प्रयोग करना है। बुद्धिमान और अनुभवी अध्यापक इस विधि को पूर्णतया जानते हैं। नवयुवक अध्यापक को, यदि वह अपवाद नहीं, इस विधि का ज्ञान नहीं होता। परिणाम स्वरूप वह बड़ी बड़ी भूलें करता है और अपने लिए अगणित कठिनाइयां पैदा करता है।

प्रभुता प्रवृत्ति मनुष्य की सब से बड़ी उत्कंठाओं में से एक है। दूसरों से ऊंचा रहना, प्रथम और सर्वोच्च होना, प्रमुख होना अथवा सब प्रकार के अधिकार प्राप्त करने आदि की इच्छायें इसी प्रवृत्ति के रूप हैं। यही वह प्रवृत्ति है जिस ने मनुष्य का समुद्र और वायु की विजय के लिए नेतृत्व किया और पुनः यही वह इच्छा है जो मनुष्य को अपने पड़ोसी को अपने आधीन करने और उसे जीतने के लिए प्रेरित करती है। हिमालय की हिम से आच्छादित चोटियां जिनका आकाश के निवासियों के साथ सम्पर्क प्रतीत होता है और जो अपने उज्वल और देदोप्यमान मुख को किसी वनस्पति और पशु पक्षी को क्षुब्ध करने की आज्ञा नहीं देतीं, किन्तु मनुष्य की प्रवेश करने योग्य आंख, चतुर शस्त्र और प्रबल हाथ पांवों के आगे प्रति वर्ष झुक रही हैं। इस के प्रबल और भयंकर आक्रमण, इस के हैरान करने वाले धैर्य और अद्भुत आन्तरिक बल अथवा सहन शक्ति को देख कर अत्यन्त दूर ध्रुव प्रदेश भी

इस के सम्मुख नतमस्तक हो जाता है। और निस्सन्देह इस प्यार भरे, मीठे परिश्रम और त्याग के पीछे अनुसन्धान, ज्ञान, दृढ़ता और अन्त में यह अनुभव करने की इच्छा ही तो है कि वह मेरे आधीन है और यह मेरे शासन में है। प्रत्येक सफलता के साथ गर्व, अभिमान, अहंकार और उस भावना के अन्य सब रूप उस सफलता के विचार को दृढ़ करते हैं और अगली सफलता के लिए उत्कंठा पैदा करते हैं। इस प्रकार इस प्रवृत्ति का कोई अन्त नहीं।

साधारण जीवन में अपने लिए महत्वशाली स्थानों की प्राप्ति और दूसरों को पीछे धकेलने की भावना में प्रभुता प्रवृत्ति के ही दर्शन होते हैं। किस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपना नाम अख़बारों और विज्ञापनों में छपा हुआ देखना चाहता है। किस प्रकार हर एक की यह कामना रहती है कि कोई कैमरामैन उस का चित्र ले ले और वह चित्र किसी सचित्र पत्रिका में छप जाये। यदि कोई मनुष्य मनोवैज्ञानिक चक्षु रखता हो तो वह देख सकता है कि किसी सामाजिक सम्मेलन के बाद और तो और बड़े बड़े व्यक्ति किस प्रकार इस प्रतीक्षा में रहते हैं कि समाचार पत्रों के सम्वाद-दाताओं की नज़र उन पर पड़ जाये। प्रत्येक व्यक्ति अपने तौर पर दूसरों से ऊँचा रहने का थोड़ा बहुत प्रयत्न अवश्य करता है।

श्रेष्ठ अथवा सर्वोच्च रहने की यह इच्छा जब तक उन सफलताओं की ओर ले जाती है जो समाज के लिए लाभ–दायक हैं तब तक तो यथार्थ और प्रसन्नतादायक है किन्तु सर्वोच्च होने की प्रसन्नता में केवल उन्मत्त रहने की इच्छा दुर्भाग्य का चिह्न और कष्टप्रद है। यदि कोई व्यक्ति इस भावना से कि वह कोई उपयोगी सफलता पा लेगा, प्रयत्न करता है और परिणाम-स्वरूप उस सफलता की प्राप्ति पर उस का गर्व अनुभव करना, ऊंचा

सिर रखना और उस का विस्तृत और स्पष्ट हंसी वाले माथे के साथ चलना युक्ति संगत है। उस का यह व्यवहार समुचित और न्याय संगत है। किन्तु इस के विरुद्ध जो व्यक्ति किसी सफलता की तो उत्कंठा नहीं रखता किन्तु केवल सर्वोच्च होने की प्रसन्नता का आनन्द लेना चाहता है, वह न केवल अपने जीवन को दुखी बना लेता है प्रत्युत उन का जीवन भी दुखी बना देता है जिन में वह रहता है। इस प्रकार के व्यक्ति जीवन के हर क्षेत्र में मिलते रहते हैं। जब ऐसा व्यक्ति अपनी इस अभागी अथवा तुच्छ उत्कंठा की पूर्ति का अवसर ढूंढने के लिए निकलता है तो वह कई प्रकार की चिन्ताओं में घिर जाता है। वह ऐसा ख़याल कर लेता है कि मैं सर्वोच्च हूँ जब कि वास्तव में वह ऐसा नहीं होता। वह निश्चय ही मानसिक रोग में ग्रस्त होता है जिस का सब से बुरा रूप प्रभुता-उन्माद के नाम से प्रसिद्ध है।

एक शिक्षणालय में प्रभुता-उन्मत्त व्यक्ति अर्थात ऐसा व्यक्ति जिस में सब से बड़ा होने और सर्वोच्च होने की विह्वलता पाई जाती है, उस संस्था के लिए लानत है। एक भूखी बिल्ली की भाँति, जो छिद्रों से चूहों को झांकती रहती है, यह मनुष्यता का नीचतम अंग उन भाग्यवान क्षणों की उत्कंठा से प्रतीक्षा करता रहता है जब कि वह महत्वशाली पदों पर पंजा मार सके या अधिकार कर सके। वह खेलों की कमेटी का प्रधान होगा, साहित्यिक समितियों का प्रधान होगा, वह हैल्थ और सोशल सर्विस इत्यादि समितियों का प्रधान होगा। वह सोचता है कि वह हकूमत करने के लिए पैदा हुआ है। और इस बात का इच्छुक रहता है कि उस के साथी इस सत्यता को स्वीकार करें। वह बड़े स्वाद से यह कल्पना कर लेता है कि उसे श्रेष्ठ बुद्धि और चातुरी प्रदान हुई है

जिस का महत्व या जिस की कीमत दूसरे नहीं समझ सकते। वह चाहता है कि दूसरे उस की हां में हां अवश्य मिलायें या उस की हर बात का अनुमोदन अवश्य करें क्यों कि वे उन उपहारों के रखने का मान नहीं कर सकते जो कुदरत ने उसे प्रदान किये हैं।

कल्पना और वास्तविकता सदा से एक दूसरे के शत्रु हैं। वे लोग जो कल्पना के ही पुजारी हैं जब वास्तविकता की चोटें खाते हैं तो हैरान रह जाते हैं। एक स्कूल में अधिकारों का भूखा अध्यापक जब अपने उन साथियों से जो अपने अधिकारों के लिए डट जाते हैं विरोध पाता है तो अत्यन्त बेचैनी का अनुभव करता है। तब वह ऐसे लोगों पर विजय पाने के लिए अपने ही दृष्टिकोण से कुछ योजनाएं और कपट प्रयोग सोचता है। निश्चय ही यहीं से ही स्कूल में अनुरूपता का ह्रास आरम्भ हो जाता है। यदि वह अपने अनुचर, साथी और पार्टी बनाने की योग्यता रखता है तो वह यथापूर्व रह सकेगा। किन्तु यदि इस दिशा में उस के प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं तो वह प्रोटैस्ट के तौर पर स्कूल के सम्पूर्ण कार्यक्रम से रिटायर हो जायेगा। जिससे संस्था को सामूहिक रूप से भारी हानि होगी। यदि एकान्त उसके लिए असहनीय हो क्यों कि अधिकार प्राप्ति की उत्कंठा उस में अपरिमित है, तो उसका अचेत मन उसके सम्मुख एक मनघड़त बचाव प्रस्तुत कर देगा जिसका नाम साज़िश का पागलपन है। वह यह महसूस करना आरम्भ कर देगा कि उसके पीछे कुछ व्यक्ति लगे हुए हैं जिन्होंने उसके विरुद्ध एक निश्चित साज़िश बनाई हुई है। प्रायः यह वही लोग होते हैं जिन से उसका अधिकार और योग्यता सम्बन्धी विरोध चल रहा होता है। वह उन तरीकों के सम्बंध में सत्याभास सी युक्तियां और निष्कपट सी

कहानियां घड़ लेगा जो उसके काल्पनिक शत्रु अन्दर ही अन्दर उस के प्रभाव और महत्व के नाश के लिए बरत रहे हैं। तब वह अश्रु-पूर्ण आँखों के साथ अपने उच्चाधिकारियों के सम्मुख विलाप करते हुए शिकायत करेगा और अपने आप को एक ऐसे अत्यन्त अभागे व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करेगा कि जिस से ऐसे न्यून से न्यून आराम भी छीन लिए गए हैं जिनको उसे मनुष्य होने के कारण पाने का पूर्ण अधिकार था। उच्चाधिकारी भी यदि ऐसा व्यक्ति हो जो दिमाग़ से काम लेने के स्थान पर दिल से अधिक काम लेता हो तो वह शीघ्रता से उन बातों पर विश्वास कर लेता है जो कुछ कि वह प्रभुता उन्मत्त व्यक्ति कहता है अथवा वह उच्च अधिकारी भी किसी अंश में प्रभुता उन्मत्त हो सकता है। जब वह किसी अन्य व्यक्ति को बचाव और सहायता के लिए अपनी ओर सरकते देखेगा तो उसके अहंकार की मात्रा और बढ़ जायेगी। इसलिए वह उस असन्तुष्ट व्यक्ति की बातों को सच्चा मान लेगा और अन्य कुछ नहीं तो केवल रोब डालने के लिए वह उसे दूसरे आधीन कर्मचारियों पर उनके अधिकारों की परवाह न करते हुए मुख्य बना देगा। जब ऐसा हो जाता है तो उसका परिणाम होता है असन्तोष और भेदभाव। किन्तु यदि उच्चाधिकारी बड़ा बुद्धिमान, विचारशील, सावधान, सचेत है और ऐसा आर्द्रहृदय नहीं कि जिसके न्याय को झूठे आँसू प्रभावित कर सकें तो उस अवस्था में प्रभुता-उन्मत्त व्यक्ति बेबस हो जाता है और अगला कदम जो वह लेता है वह यह होता है कि वह उस स्थान को छोड़ देता है और नया स्थान ढूंढता है।

एक सफल शिक्षासंस्था के लिए कर्मचारियों की एकचित्तता सर्वप्रथम आवश्यकता है। भेदभाव संस्था के मुख्य कार्यकर्ता अथवा प्रधान कर्मचारियों में से कुछ या दोनों के दोष का परि-

चायक है। प्रत्येक स्कूल के हैडमास्टर या प्रत्येक कालिज के प्रिन्सिपल का दृष्टिकोण मनुष्य जीवन के सम्बन्ध में विस्तृत होना चाहिए। उसे इस आदर्श के साथ चलना चाहिए कि संसार में केवल एक दृष्टिकोण ही नहीं है। जो पद उसे प्राप्त है वही उसकी अधिकार प्राप्ति की इच्छा के सन्तोष के लिए पर्याप्त होना चाहिए। इसलिए उसे अपने आधीन कर्मचारियों से नियन्त्रण और अधिकार सम्बन्धी कार्यों में सहायता लेने के लिए तैय्यार रहना चाहिए। कुछ ऐसे उच्चाधिकारी होते हैं जो अपने आप प्रत्येक कार्य करने के इतने इच्छुक होते हैं कि वे अपने अधिकारों और नियंत्रण की ऐसी देख रेख करते रहते हैं जैसा कि ईर्ष्या के कारण एक सांप के गुप्तकोष की रखवाली की कथा प्रसिद्ध है। स्कूल के एक भी कार्यक्रम में उनके आधीन कर्मचारियों को भाग लेने की आज्ञा नहीं होती। छात्रों को न तो किसी प्रकार की स्वतंत्रता होती है और न ही उन्हें अपने कार्यक्रम के निर्माण का अवसर मिलता है। एक उच्चाधिकारी महोदय प्रायः बड़े जोश ख़रोश से अपने आधीन कर्मचारियों को कहा करते थे कि वे २४ घंटों के सरकार के नौकर हैं। दूसरे शब्दों में उसका अभिप्राय यह होता था कि वे उसके निजी नौकर हैं। इसी जोश में ही वह इसी वाक्य को अपने नौकरों के सम्मुख भी दुहराया करता था। निस्सन्देह ऐसा अधिकारी अपने उच्च पद का अनुचित लाभ उठाता है। वह यह महसूस कर सकता है कि जिनको वह देख रहा है उनका वह राजा या अधिपति है किन्तु वह इस सत्य से अनभिज्ञ है कि जो कुछ वह देखता है वह स्थूल या शारीरिक भाग ही है और उसे इस बात का पता नहीं कि उसके साथियों और आधीन कर्मचारियों के हृदय में विद्रोह का झण्डा खड़ा हो चुका है। इस प्रकार का उच्चाधिकारी हमदर्दी, मान और प्यार सब कुछ खो बैठता है और

परिणाम स्वरूप उसे दुःखी होना पड़ता है। ऐसा ही अधिकारी अपने असन्तुष्ट आधीन कर्मचारियों का स्वागत करता है। जब वे अपने साथियों के हाथों पाये हुए काल्पनिक दुःखों की शिकायत उसके पास ले जाते हैं तो जैसे को तैसा मिल जाता है और ऐसे अपवित्र मेल से वह चिंगारी चमक उठती है जो जल्दी या देर से स्कूल में प्रचंड आग भड़का देती है।

शिक्षा संस्था के लिए प्रभुता-उन्मत्त व्यक्ति एक खतरा है। उसके विचार और ढंग प्रायः छूत के रोग होते हैं जो परिणामस्वरूप संस्था के अनुशासन पर दुष्प्रभाव डालते हैं। एक नीतिज्ञ हैडमास्टर ऐसे व्यक्ति को महत्व का स्थान देता है और साथ साथ इस बात का भी ध्यान रखता है कि वह कहीं अधिक विघ्न डालने वाला न हो जाये। वास्तव में एक स्कूल में ऐसे प्रभुता-उन्मत्त व्यक्ति का कोई स्थान नहीं। उसका उचित स्थान तो किसी मानस विश्लेषक का औषधालय है। वह समय अब बहुत दूर नहीं जब कि ऐसे व्यक्ति अध्यापक पद के लिए अयोग्य समझे जायेंगे या इस व्यवसाय में प्रविष्ट होने से पूर्व एक रोगी के रूप में उनका इलाज किया जायेगा।

न केवल प्रभुता-उन्मत्त व्यक्ति प्रत्युत प्रत्येक व्यक्ति किसी हद तक शासन की गहरी इच्छा रखता है। प्रतापी मुग़ल सम्राट् शाहजहां के सम्बन्ध में कहा जाता है कि जब वह कैद में था तो उसने अपने पुत्र औरंज़ेगब से प्रार्थना की कि वह उसे कुछ बालक भेज दे ताकि वह उनको पढ़ाने में अपना समय व्यतीत करे। चतुर औरंगज़ेब ताड़ गया कि बूढ़े सम्राट् का गुप्त उद्देश्य शिक्षण नहीं प्रत्युत अपनी शासन प्रवृत्ति का सन्तोष है। प्रायः अध्यापक अपनी श्रेणी में शाहजहां की भाँति होते हैं। अध्यापक अपने आप को

राज्य का प्रतिनिधि समझता है। और छात्रों के प्रति उसका व्यवहार प्रायः राज्य के रूप से प्रभावित होता है। भारत जैसे देश में जहां कई शताब्दियों से स्वेच्छित और अनियंत्रित सा राज्य रहा है अध्यापक ने अपने स्थान पर अपने आप को एक राजा समझा हुआ है जिसके आदेश मज़हब का भाग समझे जाते हैं। गोल्डस्मिथ के स्कूल मास्टर की भाँति एक हिन्दुस्तानी अध्यापक अपनी श्रेणी में प्रविष्ट होते ही एक गम्भीर और भयसूचक सा आकार बना लेता है जब कि वह अपनी श्रेणी से बाहिर काफ़ी प्रसन्नवदन होता है। उसके दो प्रकार के व्यक्तित्व की सचाई यह प्रकट करती है कि वह अपनी श्रेणी में अपनी प्रभुता प्रवृत्ति को सन्तुष्ट कर रहा है। इस प्रकार के अध्यापक अगणित हैं। हैलन पारखस्ट महोदया (Halen-Parkhust) कहती हैं कि "हम सब जानते हैं कि वे अध्यापक जो प्रतिदिन प्रातः अपने व्यक्तित्व को ठीक उस प्रकार टांग लेते हैं जैसे वे कोट को टांग लेते हैं। क्योंकि स्कूल से बाहिर तो ऐसे अध्यापक साधारण मानवी रुचियां और आकर्षण भी रखते हैं किन्तु वे अपने स्कूल में अपने छात्रों के सम्मुख इनकी नुमाइश करने का साहस नहीं रखते। ताकि कहीं ऐसा न हो कि ऐसा करने में अपना प्रभुत्व न खो बैठें"। ऐसे अध्यापक अपने शिष्यों के व्यक्तित्व का बहुत कम आदर करते हैं। सम्भवतः उन्हें यह विचार भी नहीं होता कि उनके छात्रों का भी कोई व्यक्तित्व है। किन्तु वे अपना गौरव बनाये रखने और उतना मान पाने के इच्छुक रहते हैं जितना कि एक मनुष्य अधिक से अधिक पा सकता है। छात्रों की ओर से प्रस्तावित कोई भी विचार उनके लिए असहनीय होता है। उन्हें अपने दोष के स्वीकार करने में शर्म आती है इस लिए अपने दोष स्वीकार करने के लिये वे उद्यत नहीं होते। वे यह नहीं जानते कि उनके

आधीन पढ़ने वाले छात्र स्वयं विचार करने की शक्ति तथा चेष्टा रखते हैं। इस बात के विचार मात्र से ही वे थर्रा उठते हैं। वे तो उन्हें अपने ही अच्छे, बुरे या नीचतम संस्करण रूप में देखना चाहते हैं। उनके लिए एमर्सन महाशय ने बहुत काल पहले एक चेतावनी दी है कि "आप अपने जैसा एक और व्यक्ति बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं, एक ही काफ़ी है"। ऐसे अध्यापकों का व्यवहार बड़ा कट्टर होता है। जब उनके छात्र थोड़ा सा भी उन से असहमत होते हैं तो वे क्रुद्ध हो जाते हैं। वे सर्वदा ऐसे छात्रों को झिड़कने के लिए उद्यत रहते हैं जो ऐसे प्रश्न करते हैं जिनके उत्तर स्वयं अध्यापक को नहीं आते। ऐसे अध्यापकों से शिक्षा संकुचित होती है और उनके शिष्यों के व्यक्तित्व के विकास का निरोध हो जाता है।

हर वस्तु का समय निश्चित होता है और उपरिवर्णित अध्यापकों का समय भी अब समाप्त हो गया है। वर्तमान शताब्दी उनके लिए खुली ललकार है। या तो वे बदल जायें या इस पद को ही छोड़ जायें। वे व्यक्तित्व के नाशक हैं। इन शर्मीले, हिचकचाने वाले, भद्दी चाल वाले और सन्देह युक्त व्यक्तियों के, जो हमारी गलियों में फिरते नज़र आते हैं, पैदा करने की ज़िम्मेदारी इन लोगों पर ही है। यदि अब भी वे अपनी स्थिति को पूर्ववत् बनाये रखने के इच्छुक हैं तो वे एक त्याग के लिए उद्यत हो जायें। और वह यह कि वे प्रभुता की प्रसन्नता को जिस भाव में लेते हैं उसे त्यागने के लिए अवश्य उद्यत हो जायें। उनकी प्रभुता प्रवृत्ति को अब नई दिशा तलाश करनी होगी।

एक साधारण अध्यापक तीन मुख्य प्रवृत्तियां रखता है। सर्व-प्रथम उसे अपने उन प्रिय सिद्धान्तों को, जिनका कि वह अपने छात्रों से अन्धाधुन्ध अनुकरण कराना चाहता है, अपने छात्रों के सम्मुख

रखने में बड़ी प्रसन्नता होती है। दूसरा जब उन्हें कठिनाइयों का सामना होता है तब वह उनकी सहायता के लिए विह्वल हो उठता है। तीसरा वह छात्रों की अशुद्धियों को उन से शुद्ध कराने के बदले अपने आप शोधने में बड़े गर्व का अनुभव करता है। यह अध्यापकों की प्रभुता प्रवृत्ति के तीन रूप हैं जो छात्रों के व्यक्तित्व को स्वतंत्र रूप से विकसित नहीं होने देते। पैजिट महोदय (Paget) द्वारा लिखित व्यक्तित्व के सच्चे अर्थ हैं आत्मसञ्चालन और उत्तरदायित्व का सच्चा अनुभव और ऐसे व्यक्तित्व की उचित उन्नति के लिए सर्वप्रथम स्वतंत्रता पुनः प्रस्तुतता की आवश्यकता है। एक साधारण अध्यापक इन में से एक भी अपने शिष्यों को प्रदान नहीं करता।

भारतीयों के सम्बन्ध में यह आम शिकायत है कि उन्हें अपने उत्तरदायित्व की चेतना नहीं। वे साधनपूर्णता और प्रस्तुतता से शून्य हैं। इसका कारण यह है कि उन्हें शिक्षाकाल में अपने उत्तर-दायित्व के अनुभव का कोई अवसर ही नहीं दिया जाता। न स्कूल में और न ही घर में उन्हें ऐसा स्वतन्त्र वातावरण दिया जाता है जहां वे अपने सम्बन्ध में कुछ सोच सकें या योजना बना सकें। माता पिता की सब से बड़ी इच्छा यह होती है कि उनके बच्चे उनका अनुकरण करें और उनकी पारिवारिक तथा सामाजिक परम्परा को दृढ़ता से बनाये रखें। वे अपने बालकों के हर प्रकार के सुख की सामग्री उपस्थित करने का प्रयत्न करते हैं। वे उनके विवाह का प्रबंध करते हैं और उनके घर बनाने में सहायता करते हैं और इसके पश्चात् अपने पोतों और यहां तक कि अपने दोहतों और दोहतियों का भी ध्यान रखते हैं। इसी लिए तो प्रायः भारतीय स्वकल्पित साधनों के प्रयोग का अवसर नहीं पाते हैं और अपने पांव पर खड़े नहीं हो

सकते हैं। इन्हें कभी अपने सम्बन्ध में सोचने का अवसर नहीं मिलता। परिणाम स्वरूप उन में सच्चे व्यक्तित्व का अभाव रहता है।

स्कूलों में भी अध्यापक इसी रूपरेखा पर चलते रहते हैं। वे अपने छात्रों को अपने कार्य आप नहीं करने देते। वे सोच लेते हैं कि वे यह काम नहीं कर सकते और इस प्रकार उनकी कार्यशक्ति का तुच्छ अनुमान लगा लेते हैं। इसके सम्बंध में उन्हें आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसन्धान कार्य से परिचित होना चाहिये।

अन्य दोष जो अगणित भारतीयों के व्यक्तित्व के नाशक हैं, वे हैं दूसरे के दृष्टिकोण की असहनशीलता, श्रम के सम्बंध में गौरव और प्रतिष्ठा का झूठा विचार, भाग्यदोष का पक्का निश्चय, चाहे वह कर्म सिद्धान्त का भ्रान्त रूप हो या वह सर्वशक्तिमान भगवान के अनिवार्य निर्णय की स्वीकृति का रूप हो। जिन बातों की इन लोगों को आवश्यकता है वे हैं सहनशीलता और परस्पर मान का भाव। वे अपने आप को यह मानने के लिए बाध्य कर लें कि हर प्रकार का श्रम और उद्योग मानपूर्ण है और अन्तिम किन्तु सब से आवश्यक यह कि मनुष्य का प्रयत्न अवश्य रंग लाता है। यह विचार इन्हें मनुष्य जीवन के प्रति नवीन व्यवहार सिखायेगा किन्तु यह आचार-व्यवहार एक दिन में नहीं आ सकता। यह तो बचपन से ही सुव्यवस्थित क्रियाओं का परिणाम स्वरूप होता है। यदि उस सुकुमार आयु में जब कि उस बढ़ते हुए बालक में सोचने और कार्य करने की नई आदतें बन रही हैं, उसे अपने आप काम करने, समूहों में कार्य करने और फलतः अपने निर्माण कार्य में प्रसन्नता अनुभव करने का अवसर दिया जाये तो वह ऐसा शक्तिशाली व्यक्ति बनेगा कि जिसमें अपनी इच्छानुरूप साहस और उत्तरदायित्व अपने आप पैदा हो

जायेंगे। इस परिवर्तन के लिए अपने देश के बुनियादी स्कूलों के पाठ्यक्रम में मौलिक तबदीलो की आवश्यकता है। इस तबदीली के साथ अध्यापक का बदलना भी अत्यन्तावश्यक है। उसे अपने ऊँचे आसन को छोड़ कर नीचे बैठे छात्रों में घुल मिल जाना होगा। कुटिल भृकुटि और डंडे को छोड़ना होगा। निस्सन्देह इनकी उस समय आवश्यकता थी जब मिश्र पर ट्यूटनखे़मन का राज्य था। वर्तमान शताब्दी की सम्मति में इनका वास्तविक स्थान अजायबघर है।

एमरसन महोदय लिखते हैं कि "शिक्षा का रहस्य छात्रों के सम्मान करने में है"। और हमारी सम्मति में सब से अधिक मान जो एक अध्यापक अपने छात्रों को दे सकता है वह यह है कि वह उन्हें संसार के निर्माण कार्य में अपना स्वतन्त्र भाग प्रदान करने के योग्य बना दे।

पांचवां अध्याय

आत्म नमन

आत्म नमन आत्म प्रभुता प्रवृत्ति की जुड़वीं बहिन है और मनुष्य के जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसकी जीवन वृत्ति उतनी ही शीघ्र आरम्भ हो जाती है जितनी आत्मप्रभुता की। एक बालक जब उत्पन्न होता है तो बहुत निर्बल होता है। अपने विकास और वृद्धि के लिए वह अपनी शारीरिक और सामाजिक परिस्थितियों का आश्रय लेता है। पहले परिवार पुनः समाज सामूहिक रूप में प्रायः अपने आदर्शों और परम्पराओं के आधार पर उसकी वृद्धि और उन्नति की रूपरेखा बनाता है। पहले चार पांच वर्षों में उसे कई प्रकार के अनुभव होते हैं। जिन में से कई ऐसे होते हैं जो उसके उत्साह वर्द्धक होते हैं और कई मानहर। मानहर अनुभव कुछ काल पश्चात् उसे भूल जाते हैं। इस दृष्टि से नहीं कि वे मन से निकल गए हैं प्रत्युत वे अचेतमन में चले जाते हैं।

फ्राइड ने हमें यह चेतावनी दी है कि मन की यह सामान्य प्रवृत्ति है कि यह अपने अप्रिय अनुभवों को भूल जाता है, विशेष रूप में उन अनुभवों को जो उसके स्वाभिमान के आदर्शों के प्रतिकूल होते हैं। इस प्रकार के अप्रिय अनुभव सचेत मन से लुप्त हो जाते हैं क्योंकि यह बहुत काल तक उन्हें सहन नहीं कर सकता। ये अनुभव अचेत-मन में रहते हैं और प्रत्येक जीवधारी रचना की भाँति बढ़ते रहते हैं। यदि आप किसी झील में एक कंकर फैंकें तो आप देखेंगे कि वह गिरते ही एक मंडल (घेरा) पैदा करता है तत्पश्चात् एक और, पुनः इसी प्रकार वे मंडल बनते जाते हैं और हर बार मंडल बड़ा

होता जाता है। ठीक इसी रूप में एक अप्रिय अनुभव अचेत मन में प्रविष्ट होता है। उससे संयुक्त और कभी कभी दूर के विचार उसके चारों ओर एकत्रित हो जाते हैं। इस प्रकार से अचेत मन में ऐसे विचारों का एक समूह पैदा हो जाता है जो एक दूसरे के सहचर्य में जुड़े होते हैं और तीव्र आवेग से पूर्ण होते हैं। फ्राइड इस विचार समूह को "कॉम्प्लैक्स" कहता है। कई प्रकार के अप्रिय अनुभव कॉम्प्लैक्सों को बना सकते हैं। इस प्रकार के अनुभवों में से एक मानहर अनुभव है, जो अयोग्यता, दोष अथवा पराजय से सम्बन्धित होता है। जो कॉम्प्लेक्स इस से बनता है वह आत्महीनता के नाम से प्रसिद्ध है। मनुष्य आरम्भिक बाल्यकाल में जो कॉम्प्लेक्स बना लेता है यदि वह किसी मनोविश्लेषक द्वारा परिचित होकर सुधारे नहीं गए तो वे उसके व्यक्तित्व का स्थिर रूप बन जाते हैं। कुछ चारित्रिक लक्षणों, किसी तुच्छ सी विचित्र प्रवृत्ति, कुछ शक्तियों के जो दूसरी अवस्था में स्वतन्त्र रूप से कार्य कर सकती थीं, दबाव इत्यादि द्वारा उनकी सत्ता का अनुमान किया जा सकता है। सभी कॉम्प्लैक्स कई प्रकार के कुटिल साधनों द्वारा अपने सन्तोष का प्रयत्न करते हैं। आत्महीनना के कॉम्प्लेक्स के लिए दो मार्ग हैं। यदि किसी व्यक्ति में प्रभुता-प्रवृत्ति अधिक है तो आत्महीनता उसमें विजय और शक्तिप्राप्ति का पागलपन पैदा कर देगी। इस प्रकार का व्यक्ति धृष्ट, उद्धत, अभिमानी और अत्यन्त ही प्रभुता-उन्मत्त हो जाता है। यदि कुदरत उसे अवसर दे और वह बुद्धिमान भी हो तो वह उन कार्यों का अत्यधिक प्रयोग करता है जिन से उस की प्रभुता और नाम बने। इस सम्बन्ध में नैपोलियन और हिटलर का उदाहरण समुचित है। दूसरी अवस्था में यदि प्रभुता प्रवृत्ति उस में अधिक नहीं तो आत्महीनता उसे खुशामदी या ऐसा व्यक्ति जो दूसरों के हाथों में खेलता है या

वह जो बिना सहायता के नहीं रह सकता या वह जो अपने स्वाभिमान पर लगी हुई चोट का कभी अनुभव नहीं करता, बना देती है। वह एक कीटाणु है जिसे प्रत्येक व्यक्ति कुचल सकता है। यही अवस्था निश्चय ही उसे प्रसन्नता देती है। आत्मनमन की प्रवृत्ति उस पर पूरा पूरा अधिकार कर लेती है। आरम्भिक बाल्यकाल के अप्रिय अनुभव, प्रभुता प्रवृत्ति की ओर से बल पूर्वक विरोध पाने के बदले, अत्यन्त निर्बल होने के कारण, आत्मनमन प्रवृत्ति की वृद्धि के लिए पर्याप्त खुराक बनते हैं। वह व्यक्ति, जिसमें यह दुर्घटना होती है, उपयोगी होने के बदले एक कौतुक होता है। वह अपने आराध्यदेव के बिना नहीं रह सकता। उसे पूजा के लिए कुछ न कुछ अवश्य चाहिए। स्टैकल महोदय लिखते हैं कि फिलिपीन के जज़ीरा में बहुत से लोग इस मानसिक अवस्था के रोगी हैं। उनमें विशिष्टता, श्रेष्ठता और आगे बढ़ने की इच्छा है ही नहीं किन्तु वे सदा इस बात की प्रतीक्षा में रहते हैं कि कोई दूसरा व्यक्ति कार्य करे और वे उन की नकल करें। यह उनके चरित्र के मुख्य लक्षण हैं।" स्टैकल ने इस अवस्था का नाम मल्लीमल्ली रखा है। और यह शब्द वहां की जाति की भाषा से लिया गया है।

मल्लीमल्ली रोग जीवन के सभी क्षेत्रों पर प्रभाव डालता है। स्कूल पर भी इसका प्रभाव आवश्यक है। इस रोग का रोगी वैसा ही स्कूल के लिए हानिकारक है जैसा कि प्रभुता उन्मत्त व्यक्ति। यही वह व्यक्ति है जो विभिन्न कोनों में ठहर कर हैडमास्टर के गुज़रने की प्रतीक्षा करता है ताकि वह उसे दीर्घ प्रणाम करके अपने मन के बोझ को हलका कर ले। यदि किसी प्रातः वह इस प्रकार का अवसर खो बैठता है तो वह स्कूल के शेष समय में इतना उत्कंठित

रहता है कि जब तक वह अपना यह कर्तव्य पूरा न कर ले उसे चैन ही नहीं आता। वह अपनी मानसिक शान्ति के लिए अपनी आधीन स्थिति में प्रसन्न रहता है। उसके उच्चाधिकारी का एक एक शब्द उसके लिए कानून है। वह उससे मतभेद पैदा होने का कोई अवसर पैदा ही नहीं होने देता। वह अपने मालिक के इशारे से जीवन पाता है। ऐसे अवसर आ जाते हैं जब हैडमास्टर ग़लती करता है। स्टाफ़ के अन्य सदस्य उसकी ग़लती पर क्रोध प्रकट करते हैं। ऐसे समय में हैडमास्टर कम से कम मल्लीमल्ली अध्यापक से निश्चित पोषण पाता है, जो अज्ञानी हैडमास्टर का प्रायः प्रिय बन जाता है। एक बुद्धिमान हैडमास्टर राजा कैनूट (Canut) की भाँति अपनी शक्ति, योग्यता और कमज़ोरियों को जानता होता है और मल्लीमल्ली अध्यापक की ख़ुशामद से आसानी से अनुचित मार्गों में नहीं धकेला जा सकता। वह अपनी बुद्धि का प्रयोग करता है और उस मल्लीमल्ली अध्यापक के वास्तविक रूप को खूब समझता है। वह ऐसे ख़ुशामदी व्यक्ति पर अपना द्वार बन्द न करके उसकी बातों को झटपट और पूर्णतया स्वीकार नहीं करता और जानता है कि ऐसे व्यक्ति का उचित प्रयोग किस प्रकार किया जाये। ख़ुशामदी अध्यापक प्रायः चुग़लियां करता है और जो सूचनाएं वह देता है सर्वदा ग़लत होती हैं। क्योंकि उसका उद्देश्य अपने मालिक को किसी सचाई से परिचित करना नहीं प्रत्युत वह तो उसके लबों पर मुस्कराहट देखना चाहता है और उसके बदले अपनी पीठ पर उसकी थपकी लेना चाहता है। इसी लिए ही वह कई दिलचस्प कपटों को घड़ता है। मनुष्य स्वभाव दुर्बल है। ख़ुशामद एक सस्ता सा हथियार है जिसके सम्मुख यह अपना साहस छोड़ देता है। इसके अतिरिक्त चूंकि ख़ुशामदी की बातें अत्यन्त मीठी होती हैं इस लिए यह उसका

निश्चित ही शिकार हो जाता है। अज्ञानी अथवा मनुष्य की इस प्रवृत्ति वाला हैडमास्टर बिना जाने बूझे ख़ुशामद का शिकार हो जाता है फलतः कई ग़लतियां करता है और अपने लिए कठिन समस्याएं खड़ी कर लेता है। पुनः ऐसे भी हैडमास्टर होते हैं जो ऐसे एक व्यक्ति के बिना, जो सम्पूर्ण दिन उनकी चापलूसी करता रहे, रह ही नहीं सकते। ऐसे अफ़सर की आधीनता में मक्खीमक्खी अध्यापक का राज्य होता है। क्योंकि वे दोनों एक दूसरे की झूठी प्रशंसा के राग अलापते हैं और इसी बीच स्कूल का भी सत्यानास कर देते हैं। एक बहुत पुरानी हिन्दुस्तानी कहानी है कि एक समय एक ऊँट का विवाह निश्चित हुआ। उसकी बरात के मुख्य बराती थे गधे। जब वह सुन्दर शाहज़ादा (ऊंट) अपने सुन्दर वस्त्र आभूषणों से अलंकृत होकर बाहर निकला तो गधों ने उसकी स्तुति में ऊंचे स्वर से यह मीठा राग अलापा कि "तुम कितने सुन्दर लगते हो, तुम कितने सुन्दर लगते हो"। जब यह राग समाप्त हुआ तो ऊंट ने गर्व से आंखें ऊँची उठाई और कहा कि "कितना सुन्दर राग है"। मक्खीमक्खी अध्यापक और ख़ुशामदपसन्द हैडमास्टर प्रतिदिन ठीक इसी तरह करते रहते हैं। मक्खीमक्खी अध्यापक कभी कभी चतुर छात्रों की भी चापलूसी करता है। वह स्कूल में योग्य छात्रों के पीछे फिरते, उन्हें पीठ पर थपकियां देते और उनकी योग्यता को आकाश पर चढ़ाते देखा गया है। इस प्रकार का व्यवहार छात्रों में अपने सम्बन्ध में एक ग़लत कल्पना सी पैदा कर देता है। ऐसे अनुचित परिपोषक वातावरण में उनका अपने वास्तविक रूप को भूलना और अभिमानी हो जाना आवश्यक ही है।

कभी कभी चतुर छात्र ऐसे ख़ुशामदी अध्यापक को झाड़ भी देते हैं और यहां तक कि अपमानित भी कर देते हैं। अचम्भे की

बात तो यह है कि वह इसे भी पी जाता है और थोड़ी सी बेचेनी का भी अनुभव नहीं करता। उसकी खुशामद-प्रवृत्ति सदा ताज़ा रहती है और अन्त में उन लोगों से जिनकी वह सेवा करता रहा है प्रायः सहानुभूति और कभी कभी दया की प्राप्ति में सफल हो जाता है और यही कुछ वह अचेत रूप में चाहता है। प्रभुता प्रवृत्ति वाला व्यक्ति तो दूसरों को अपनी इच्छा में बांधने और अपने मार्ग पर चलाने में सन्तुष्ट होता है किन्तु नमन प्रवृत्ति वाला व्यक्ति दूसरों पर विजय पाने के लिए झुकता है। वह कम से कम विरोध वाले मार्ग पर चलता है और अपने पहले भाई (प्रभुता प्रवृत्ति वाले) की अपेक्षा बहुत कम चिन्ता और कष्ट से अपने उद्देश्य की प्राप्ति में सफल हो जाता है। दोनों अपने जीवन में सफलता प्राप्ति की निश्चित विधियां रखते हैं। उन में से पहला कहता है कि "स्तुति मेरी और निन्दा तुम्हारी" और दूसरा चुपके से कहता है कि चाहे मेरी निन्दा हो क्यों न हो पर मुझे लाभ अवश्य हो और अन्त में पिछला पहले की अपेक्षा भली भाँति सफल होता है किन्तु एक स्कूल में उपरिलिखित दोनों प्रकार के व्यक्तियों का अस्तित्व अहितकर है। एक डंक का और दूसरा थपकी का प्रयोग करता है किन्तु दोनों विष स्वरूप हैं। बुद्धिमान हैडमास्टर दोनों से अपनी रक्षा करे। शिक्षा और धर्म की दृष्टि से दोनों अयोग्य और निन्दनीय हैं क्योंकि दोनों सदा जीवन के व्यर्थ पहलू पर चलते हैं। वे सदा अपने वैयक्तिक उद्देश्यों की पूर्ति में लगे रहते हैं और समाज हित में कोई रुचि नहीं रखते। उनके हृदय में न तो स्कूल के लिए कोई हित का भाव होता है और न ही हैड-मास्टर के लिए मान का। वह अधिकारी (अफ़सर) सौभाग्यवान है जो दोनों को समझता है और दोनों को उचित दूरी पर रखता हुआ यथायोग्य स्थान देता है।

छठा अध्याय

गुप्त स्रोत

हम ने पिछले अध्यायों में प्रभुता-उन्मत्त और खुशामदी व्यक्ति के मन की विवेचना की है और यह बताने का प्रयत्न किया है कि उनकी मानसिक अवस्था जैसी कि है कैसे बनी। सभी आचरण साधारण अथवा विकृत (नियमित अथवा अनियमित) प्रयोजनपूर्ण अथवा किसी निश्चय से होते हैं। इसी प्रकार ही प्रभुता-उन्मत्त और खुशामदी का आचरण भी प्रयोजनपूर्ण होता है किन्तु उनके प्रयोजन स्वस्थ नहीं होते। क्योंकि उनका सामाजिक रूप अनुचित होता है और इस विचार का परिचायक होता है कि उन्होंने जीवन को भ्रान्त और व्यर्थ शैली को अपने लिए चुना है।

जीवन शैली का निर्वाचन आरम्भिक बाल्यकाल में, चार पांच वर्ष की आयु में होता है और गलत शैली के चुनाव की ज़िम्मेदारी शिक्षा सम्बन्धी अनुभवों पर होती है। प्रवृत्तियों का अपरिपक्व मूलरूप धर्मशून्य है। वह सुन्दर रूप से उपयुक्त होगा या अनुचित क्रियाओं से लिप्त होगा यह आरम्भिक शिक्षा पर ही निर्भर है। एक प्रभुता प्रवृत्ति, चाहे वह विशेष शक्तिशाली ही क्यों न हो, यदि उसका उचित प्रबंध किया जाये, तो समाज की उन्नति में परम सहायक हो सकता है। यही हाल नमन प्रवृत्ति का है। मनुष्य जो शिक्षा अपने पास पड़ोस से प्राप्त करता है वही मनुष्य के व्यक्तित्व को बना देती है अथवा नष्ट कर छोड़ती है।

बालक का प्रथम तथा महत्वपूर्ण वातावरण अपना पारिवारिक क्षेत्र है जिस में उसके पिता, माता, अन्य बालक अथवा दूसरे

सम्बन्धी सम्मिलित हैं। पारिवारिक वातावरण में केवल उसके पिता अथवा उसकी माता भी हो सकती है। प्रत्येक प्रकार के पारिवारिक वातावरण में इकलौते पुत्र तथा गोद लिये पुत्र को अपूर्व ध्यान मिलता है। वे लाडले होते हैं और उनकी आवश्यकतायें बे रोक टोक यथेष्ठ रूप से पूर्ण की जाती हैं। दूसरों में बांट कर खाने का अभिप्राय वे कभी नहीं सीखते, यद्यपि उन्हें सीखना चाहिए। वे अपने आप कुछ नहीं करते। सब कुछ उन्हें तैय्यार मिलता है। इसलिए वे सदा आश्रित और स्वार्थी रहते हैं। उन में आत्मनमन प्रवृत्ति कभी अपना पार्ट अदा नहीं करती। क्योंकि प्रभुताप्रवृत्ति अपने भाग से भी अधिक भाग पर अधिकार कर लेती है। वे दूसरे के दृष्टिकोण को स्वीकार करने और प्रशंसा करने की शिष्टता को, जिसकी भावी जीवन में बड़ी आवश्यकता रहती है, नहीं सीखते। वे ऐश्वर्ययुक्त देवताओं की भाँति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रबंध के लिए आस पास के फ़रिश्तों से ही आशा करते हैं। उन में से कुछ के पास अपरिमित धन होता है। वे तो आस पास के चापलूसों के साथ निर्विघ्नता से जीवन व्यतीत करने के योग्य होते हैं। दूसरे उन से कम भाग्य वाले अपनी जीविका के लिए प्रयत्न और परिश्रम के अखाड़े में फैंक दिये जाते हैं। जब वे यह देखते हैं कि कुछ अन्य व्यक्ति भी वैसे ही अधिकारों की मांग करते हैं तो उनकी भ्रांति का निवारण हो जाता है। वे अपनी जीवन सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते। क्योंकि उन्होंने कभी अपने पांव पर खड़ा होना सीखा ही नहीं। जब उन्हें जीवन शैली का निर्वाचन करना था उन्होंने ग़लत चुनाव किया। इसका कारण उनके माता पिता की अज्ञानता है जिन्होंने अपने अत्यन्त प्रेम में उन्हें बिगाड़ दिया। इन में से कुछ व्यक्ति वास्तविकता से आँखें फेर लेते

हैं और एक पागलपन अथवा उन्माद और विक्षिप्तता की शरण लेते हैं जहां पर वे अपनी पुरानी बालकों वाली स्थिति को पा लेते हैं। उन में से अन्य कोई व्यवसाय आरम्भ कर लेते हैं और अपने साथियों के लिए उत्पात का रूप धारण कर लेते हैं वे अप्रिय साथी और व्यर्थ मित्र होते हैं क्योंकि वे सदा लेने की आशा रखते हैं और लौटाने या बदले का कभी विचार ही नहीं करते किन्तु उनकी आशायें कभी पूरी नहीं होतीं और वे निराशावादी हो जाते हैं। ऐसे व्यक्ति स्कूल की पवित्र सीमा में प्रविष्ट होने और नन्हे व्यक्तियों का उत्तरदायित्व संभालने के योग्य नहीं हैं। वे उन छात्रों के, जिन से वे अनुचित आज्ञा पालन, शुश्रूषा की आशा करते हैं, शिक्षण के बदले अपनी इच्छाओं और उत्कंठाओं की पूर्ति में मग्न रहते हैं और उन से वैसी शुश्रूषा न पाकर अनुचित रूप से निर्दयी और रूखे हो जाते हैं। वे क्रोधी और शीघ्र खीजनेवाले व्यक्ति होते हैं जो अपने छात्रों को दिए हुए काम की पूर्ति में थोड़ी सी देरी सहन नहीं कर सकते। और वे यह भी सहन नहीं कर सकते कि छात्र उनकी किसी बात का निषेध करें। अध्यापक बनने के लिए निश्चय ही उन्हें पुनः शिक्षण की आवश्यकता है। निश्चय ही उन्हें दूसरा जन्म लेना होगा।

इकलोता पुत्र, गोद लिया पुत्र दोनों के चारित्रिक लक्षण या गुण प्रायः एक से ही विकसित होते हैं। ऐसे छात्र जीवन में बड़ी बड़ी आशायें बनाते हैं। वे कल्पना कर लेते हैं कि रोम किसी जादू भरी योजना से उदाहरणार्थ अल्लादीन के लैम्प से एक दिन में बन सकता है। वे सच्चे हृदय से मनोरथ बनाते हैं किन्तु वे कीचड़ में धँसे पहिये को बाहिर निकालने के लिए कंधा देने और अपना मार्ग

बनाने के लिए परिश्रम के लिए उद्यत नहीं होते। वे कल्पनायें तो बड़ी बड़ी बनाते हैं किन्तु सफलतायें बहुत कम पाते हैं।

एक से अधिक सन्तान वाले परिवार में सन्तानोत्पत्ति के क्रम का बालकों के व्यक्तित्व के निर्माण में अर्थपूर्ण भाग है। सर्वप्रथम उत्पन्न, दूसरे और सब से छोटे बच्चे को विभिन्न परिस्थितियों का सामना करना होता है जिनके फलस्वरूप उनके चारित्रिक गुण भी भिन्न भिन्न रूप में विकसित होते हैं। सर्वप्रथम बालक अपने माता पिता की आंखों का तारा होता है। चूंकि उसके पालन पोषण में शिशु रक्षण प्रवृत्ति के लिए अपने सन्तोष का सर्वप्रथम अवसर होता है इसलिए पहले बच्चे की विशेष रूप से देख रेख और रक्षा की जाती है। दूसरी सन्तान के होने तक उसकी पूर्णतया इच्छापूर्ति कर दी जाती है और उसका स्वभाव पूर्वीय राजाधिराजों की भाँति स्वच्छन्द हो जाता है। किन्तु जब दूसरा बच्चा आता है तो वह माता पिता के उस अनन्य प्रेम और मनोयोग का सहभोगी हो जाता है जो इससे पूर्व प्रथम बालक के लिए सुरक्षित थे। इस पर पहला बालक यह समझता है कि वह राजगद्दी से उतार दिया गया है और नहीं तो कम से कम उस बिना बुलाए मेहमान के आगमन को बुरी तरह अनुभव अवश्य करता है। यदि माता पिता अज्ञानतावश दूसरे बच्चे के मोह में उस से अपना प्रेम कम कर दें तो उस के मन में मानसिक अस्वस्थता का बीज बोया जाता है। फूफी की यह साधारण सी बात कि "देख! तेराऔर सांझी आ गया है" उसके दिल में गहरी चोट या घाव लगा देती है।

यदि यह एकीकरण या सुधार उचित रूप में और प्रसन्नता से हो जाय तो पहले बच्चे में सहयोग की भावना विकसित होती है।

और उसे आयु में बड़ा होने के कारण अपनी महानता का अनुभव होने लग पड़ता है। वह अपने छोटे भाइयों की रक्षा में गर्व का अनुभव करने लग पड़ता है। जितने अधिक बच्चे होते जायें उस का यह व्यवहार दृढ़ होता जाता है। उचित रूप से सुधरा हुआ बुद्धिमान बालक एक वास्तविक नेता बन जाता है। किन्तु बुरी तरह एकीकृत बालक और ऐसा बालक, जिसके व्यक्तित्व का अस्वस्थ घरेलू परिस्थितियों के कारण बहिष्कार हुआ हो, बलवाई या बाग़ी बन जाता है। पहले प्रकार का बालक एक शिक्षा संस्था के लिए वास्तविक पूंजी और दूसरे प्रकार का बालक स्थिर महामारी, जिसका अधिक समय उपयोगी कार्य करने के बदले झगड़े खड़े करने में व्यतीत होता है। आरम्भिक बाल्यकाल में अवहेलित प्रभुता प्रवृत्ति हीनता कॉम्प्लैक्स पैदा कर देती है जो भावी आयु में दूसरों को छेड़ने में अचेत रूप से सन्तुष्ट होती है। ऐसे व्यक्ति के साथ अधिकारियों और उसके साथियों का समय बड़ा बुरी तरह कटता है। क्योंकि उसके अचेत मन में यह प्रवृत्ति पहले माता पिता के लिए पुनः भाई और बहनों के लिए, जिन से अब वह बदला लेने के लिए प्रयत्नशील है, स्थिर रहती है। ऐसा व्यक्ति मार पीट से आज्ञाकारी नहीं बनाया जा सकता प्रत्युत प्रेम प्यार से मित्र बनाया जा सकता है। जो कुछ वह चाहता है वह है उत्साह, प्रेम और सहानुभूति। एक बुद्धिमान अधिकारी उसे ये चीज़ें अत्याधक मात्रा में, किन्तु नीतिपूर्वक देता है।

यदि एक पुत्री प्रथम सन्तान है और पुत्र दूसरा तो पुत्री की परवाह न करना माता पिता के लिए आसान कार्य है और आत्म-हीनता कॉम्प्लैक्स के विकास के लिए खतरा है। यदि पहली सन्तान पुत्र है और दूसरी भी पुत्र तो पहले को साधारणतया विशेष कष्ट

नहीं सहन करना पड़ता। माता पिता दूसरे पुत्र से, यदि वह किसी विषय में विलक्षण रूप से विशिष्ट नहीं, तो वैसा ही उत्साह और स्वागत प्रकट नहीं करते जितना पहले से। पहला पुत्र अपने विशेष अधिकारों का आनन्द लूटता रहता है। परिणामस्वरूप दूसरा पुत्र अत्यन्त उद्धत प्रभुता प्रवृत्ति के साथ यह अनुभव करने लग पड़ता है कि उसका स्थान दूसरा है। और कुछ काल पश्चात् बड़े विरोध के साथ, यहां तक कि कुछ असामाजिक व्यवहार से, वह यह सिद्ध करने का प्रयत्न करता है कि उसका स्थान पहला है।

सब से छोटे पुत्र का स्थान भी महत्वशाली है। उसकी परिस्थितियां उसके लिए अजीब या असाधारण होती हैं। यह जानने के लिए कि वह क्या है, वह जीवन में पहला पाठ उत्साह और खिन्नता दोनों रूप से पाता है, वह प्रायः सम्पूर्ण परिवार का प्रेमपात्र होता है। सम्भवतः उससे अत्यधिक प्रेम किया जाता है। यह उसकी प्रभुता-प्रवृत्ति के लिए उत्साहवर्द्धक स्तंभ है। उसी समय वह यह भी अनुभव करता है कि वह अपने परिवार में सब से छोटा और सब से निर्बल है और हरएक उसे सिखाने पढ़ाने का प्रयत्न करता है। यदि वह बुद्धिमान और फलतः कोमल हृदय या सूक्ष्मग्राही भी है तो वह इस पौरुष-विरोध के साथ बढ़ता है कि वह संसार के प्रत्येक व्यक्ति को पढ़ा सकता है। इसी लिए संसार के कुछ प्रतिष्ठित अध्यापक अपने माता पिता के सब से छोटे बच्चे थे। सिख धर्म के प्रवर्तक श्री गुरु नानकदेव जी अपने परिवार में सब से छोटे बच्चे थे जब कि दशम गुरु, गुरु गोविन्दसिंह अपने माता पिता के इकलौते पुत्र थे। पहले मानवजाति के महान अध्यापक थे और दूसरे महान योद्धा और अनन्य शासक थे। महात्मा गांधी सब से छोटे बच्चे थे और हमारा विश्वास है कि भावी इतिहासिक उन्हें राजनीतिज्ञ श्रेणी में स्थान देने

के बदले संसार भर के शिक्षकों में विशेष स्थान देने के लिए प्रेरित होगा।

सब से छोटे बच्चे प्रायः अच्छे अध्यापक बनते हैं। यद्यपि प्रत्येक सब से छोटे बालक का सफल अध्यापक होना आवश्यक नहीं किन्तु निश्चय ही उस में दूसरों को पढ़ाने की अभिलाषा अवश्य होगी। अल्बत्ता वास्तविक सफलता के लिए अन्य कई अंगों की भी आवश्यकता है। उन में से पर्याप्त मात्रा में बुद्धिमत्ता का होना परम आवश्यक है। कुछ काल पूर्व हम ने लाहौर के कालिजों में अध्यापकों के उत्पत्ति क्रम के जानने का प्रयत्न किया था। यहां नाम देना उचित न होगा किन्तु जो सूचना हमें मिली वह हमारी उपरिलिखित प्रस्तावना की अधिकतया समर्थक थी। प्रायः वे अध्यापक जो शिक्षण कला में प्रसिद्ध थे वे अपने माता पिता के सब से छोटे बच्चे थे। यद्यपि वे अत्यधिक न थे और सच तो यह है कि अच्छे अध्यापक बहुत अधिक नहीं होते। दूसरों के लिए बातों को स्पष्ट करने और उस कार्य में वास्तविक प्रसन्नता का अनुभव करने की प्रवृत्ति से उनका चित्त प्रसन्न होता है। वे बड़े बच्चों की अपेक्षा बहुत कम लड़ाके और अधिक समझौते की प्रवृत्ति वाले होते हैं। एक शिक्षासंस्था के सफलतापूर्ण चलाने के लिए परस्पर सहयोग और एक दूसरे के दृष्टिकोण को समझने के लिए ऐसी ही प्रकृति के लोगों की अत्यन्त आवश्यकता है।

फिर भी यह कोई अन्तिम नुस्खा नहीं है। हम यहां कोई निश्चित और कभी न बदलने वाला नमूना पेश करने का प्रयत्न नहीं कर रहे। प्रभुता-प्रवृत्ति जिसका हम अब तक वर्णन करते आये हैं, अपनी शक्ति रखती है जो प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न भिन्न है। उसके

पश्चात पारिवारिक परिस्थितियां हैं जिन में उत्पत्ति क्रम का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि इसे किसी के व्यक्तित्व को अन्तिम रूप देने के लिए केवल मात्र स्तम्भ नहीं समझ लेना चाहिए। माता पिता के साथ प्रसन्न अथवा अप्रसन्न पारिवारिक सम्बन्ध, उनका विलक्षण स्वभाव, उनका बच्चों से प्रेम और त्याग की भावना, उनकी आर्थिक अवस्था, बालक की अपनी शारीरिक अवस्था, और इस प्रकार से अन्य कई स्तम्भों का समूह बालक के व्यक्तित्व के निर्माण में प्रभाव रखता है, जो यौवन के अनुभवों से उत्तरोत्तर सुधार पाता रहता है। इस लिए यहां निश्चित आदर्श प्रस्तुत करना बड़ा कठिन है। हमारा उद्देश्य केवल यहां इस बात का प्रकाश करना है कि दुस्साध्य अध्यापक गुप्त प्रारब्ध से अटल और निश्चित व्यक्ति नहीं हैं। उनके कष्ट स्वाभाविक कारणों द्वारा पता लगाये जा सकते हैं। उन कारणों में से बाल्यकाल के अनुभवों का बड़ा महत्व है। ऐसे अध्यापकों की सहायता हो सकती है। सैकड़ों युवकों और बच्चों के इतिहास के अध्ययन ने इस बात का स्पष्ट प्रकाश कर दिया है कि वैयक्तिक गुण या लक्षण और प्रत्येक व्यक्ति के विलक्षण गुण पूर्णतया भाग्य की गुप्त हेरा फेरी पर ही निर्भर नहीं। वे साधारणतया इस रूप से उत्पन्न नहीं हुए प्रत्युत वे उनके जीवन के अनुभवों का सीधा परिणाम हैं। मनुष्य चरित्र के स्रोत अचेत मन में गुप्त रहते हैं। और जब तक उनका अन्वेषण न किया जाये तब तक मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त नहीं हो सकता। प्रत्येक अध्यापक अपने जीवन के अनुभवों को सञ्चित करे और इस बात के जानने का प्रयत्न करे कि वह वैसा क्यों है जैसा कि है?

सातवां अध्याय

भूख और संचय

एक पौराणिक गाथा है कि एक समय सम्पूर्ण संसार के स्वामी भगवान विष्णु सो रहे थे। उनकी धर्मपत्नी लक्ष्मी, जो धन की देवी समझी जाती है, उनके पास बैठी उनकी देख भाल कर रही थी। भृगु, महान ब्राह्मण गुरु, अपने लोगों को दुःख में देख कर, भगवान विष्णु से सहायता लेना चाहते थे। वह भगवान के पास गये और उन्हें गाढ़ निद्रा में देख कर बड़े क्रुद्ध हुए। यह कहते हुए कि "पृथ्वी पर के लोग इतने दुखी हैं और आप गाढ़ निद्रा में पड़े हैं ?" उन्होंने भगवान को एक लात लगाई। भगवान विष्णु हैरान होकर चौंक पड़े और भृगु महाराज को सम्मुख देख कर नम्रता से कहने लगे कि भगवन् ! मुझे क्षमा करें, क्या आप को चोट तो नहीं लगी ? दूसरी तरफ़ लक्ष्मी एक पार्थिव के इस दुर्व्यवहार से बहुत क्रुद्ध हुई और कहने लगीं, "निकल जाओ आज से तुम्हारी जाति मेरी कृपा की पात्र नहीं रही। इस प्रकार ब्राह्मणों या अध्यापकों को सदा के लिए निर्धनता का शाप मिल गया।

उपरिलिखित कथा में एक महान सत्य का समावेश है। क्योंकि जो मनुष्य संसार भर के अध्यापकों और साहित्यजीवियों के इतिहास का अध्ययन करता है, वह इस दुःख भरे सत्य से परिचित्त होता है कि धन की देवी ने उन पर अपनी कृपा के विस्तार की कभी परवाह ही नहीं की। हमें ऐसे कई विद्वानों का पता है कि जिन्हें साधारण सुखपूर्ण खाना भी प्राप्त नहीं। जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन निराशा में विताया या किसी ऐसे अच्छे परिवर्तन की उत्कट

अभिलाषा में बिता दिया, जो मरण पर्यन्त उन्हें प्राप्त न हो सका। इसके अतिरिक्त समाज ने भी उनके निर्वाह के प्रबन्ध की ओर किञ्चित् ध्यान नहीं दिया।

सम्भव है निर्धनता धार्मिक गुण हो और यह भी हो सकता है कि यह स्वर्ग के तंग द्वार में प्रवेश का भी साधन हो किन्तु निर्धनता की भी कई श्रेणियां हैं। निर्धनता जो भूख की सीमा तक पहुँचती है, उसे तो कोई ऋषि मुनि भी सहन नहीं कर सकता। भूख की निवृत्ति प्रत्येक जीवधारी के लिए मुख्य तथा प्रधान आवश्यकता है। इसके बिना न मन, न शरीर अपना कार्य कर सकता है। किसी भी वास्तविक अच्छे कार्य के आरम्भ से पूर्व भूख की पीड़ा की शान्ति आवश्यक है। अध्यापक, कलाकार, वैज्ञानिक आदि व्यवसाइयों के लिए जीविका प्राप्ति ही प्रथम कर्तव्य नहीं होना चाहिए। शिक्षण और अन्य साहित्यिक उद्यम केवल सुखप्रद वातावरण में ही जारी रह सकते हैं। यदि इस प्रकार के प्रयत्नों में व्यस्त व्यक्तियों के पास खान पान को पर्याप्त नहीं और यदि उनके विचार जीवन की आवश्यकताओं की प्राप्ति की ओर आकृष्ट रहते हैं तो जिस कार्य की उन से आशा की जा सकती है उसकी ओर वे बहुत कम लग सकेंगे और परिणाम स्वरूप बहुत कम सफलता पा सकेंगे। इन व्यक्तियों से अपने कार्य के प्रति पूर्ण न्याय की आशा उसी अवस्था में ही की जा सकती है जब कि आर्थिक प्रवृत्ति का सन्तोष उनके लिए कोई समस्या न खड़ी कर दे।

प्राचीन भारत में वर्ण व्यवस्था के कारण ऐसी समस्याएं कभी पैदा ही नहीं हुआ करती थीं। अध्यापकों की अपनी जाति थी और अन्य सभी वर्ण अवलम्बियों का यह धार्मिक कर्तव्य समझा जाता था कि वे उनकी जीवन सम्बन्धी सभी सुख सामग्री का प्रबन्ध करें। वे

अपने काम में पूरे मनोयोग और शांत स्वभाव से लगे रहते थे। इसी लिए उन में से बहुत लोगों ने पर्याप्त प्रयत्न किये और बड़ी २ सफलतायें पाईं। ब्राह्मण अध्यापक अपनी ओर से अपनी समाज से कम से कम मांग किया करते थे। उन्होंने सांसारिक विलास से मुख मोड़ कर सादा जीवन व्यतीत करना अपने लिए नियम बना लिया था। आर्थिक प्रवृत्ति की सन्तुष्टि के कारण वे अपनी सञ्चय प्रवृत्ति को उपद्रव की आज्ञा नहीं देते थे।

सञ्चय प्रवृत्ति मनुष्य के जीवन में महत्वपूर्ण पार्ट अदा करती है। इसकी शक्ति धन के सञ्चय करने में और इसकी अधिकता कृपणता में देखी गई है। कंजूस व्यय के लिए धन सञ्चय नहीं करता प्रत्युत केवल धन के लिए ही। वह केवल उसके स्वामी होने की प्रसन्नता में आनन्दित रहता है। वह अपने ख़ज़ानों की बड़ी स्पर्धा और ईर्ष्या से तथा कभी कभी बड़े बड़े कष्ट सह कर भी रक्षा करता है।

कंजूस के अतिरिक्त प्रत्येक मनुष्य धन सञ्चय की इच्छा रखता है। यह इच्छा केवल सञ्चय भावना से ही नहीं हो सकती किन्तु इस से कुछ बाहरी उद्देश्यों की पूर्ति भी हो सकती है। धन से गृहस्थ में प्रवेश या मकान बनाने या किसी फ़ैशनेबल समाज में रहने या समस्त संसार का चक्कर लगाने और इसी प्रकार की अन्य कई प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति की जा सकती है। इसी लिए ही तो दरमयाना आयु में मनुष्य की कल्पनायें लॉटरी या अन्य आकस्मिक धनप्राप्ति की ओर दौड़ती हैं। साधारण मनुष्य अपनी आय से शायद ही सन्तुष्ट देखा गया है। चाहे उसे अपना दैनिक भोजन नियमानुसार अथवा यथाक्रम मिलता रहे फिर भी वह असन्तुष्ट है। वह सदा लखपति होने के सपने देखता रहता है।

कुछ ऐसे व्यवसाय हैं जिन में सफलता के लिए आर्थिक उत्कण्ठा को पर्याप्त मात्रा में न्यून और नियमित करना पड़ता है। उन में से एक अध्यापक का व्यवसाय है। अध्यापक का मानव जाति के उत्थान में मुख्य भाग होता है। फलतः उसे धन सञ्चय की इच्छा का त्याग करना पड़ता है। वह अपने कर्तव्य की ओर अपना अनन्य मनोयोग अवश्य अर्पित करे क्योंकि इस कर्तव्य के लिए ऐसा ही ध्यान आवश्यक है। यदि धन-सञ्चय ही उसका मुख्य उद्देश्य हो जाये तो वह अपने व्यवसायिक समय से समय चुरा कर उसे विचित्र और अनोखे कार्यों में नष्ट करेगा। ऐसा अध्यापक कौमी चोर है और दूसरे चोरों की भाँति पकड़ा जाना चाहिए। प्राचीन भारत में अध्यापक इस प्रकार के दोषों से मुक्त हुआ करते थे। उन्होंने सादा जीवन के विश्वास को विकसित कर रखा था। अपनी देख रेख में आये हुए छात्रों का शिक्षण और उन्हें संयम में रखना उनका मुख्य उद्देश्य और प्रसन्नता थी। वे जानते थे कि विद्या की देवी सरस्वती और धन की देवी लक्ष्मी सौकने हैं और एक घर में रहना उनके लिए असहनीय है। ईसा मसीह एक स्थान पर लिखते हैं कि धन और भगवान दो देवों की एक साथ पूजा असम्भव है। यदि आप यहां भगवान के स्थान पर उच्चतम सभ्यता सम्बन्धी आदर्शों का शब्द रख लें तो आप एक ऐसे प्राचीन सत्य का उपयोगी प्रयोग पा सकेंगे जिसको ज़ंग नहीं लग सकता।

यदि एक अध्यापक अपना कार्य सच्चे हृदय से करता है तो उसके पास पैसा जोड़ने के वर्तमान प्रसिद्ध साहसिक कार्यों के लिए बहुत थोड़ा समय बचता है। यदि वह अपने व्यवसायिक कार्य से

किसी अन्य व्यापार में अपनी रुचि परिवर्तन के लिए प्रवृत्त हुआ है तो इस व्यवहार का कोई कारण अवश्य है। हमारी सम्मति में कारण कई और भिन्न भिन्न प्रकार के हो सकते हैं। उन में से एक यह भी हो सकता है कि उसका व्यवसायिक कार्य पूरा समय नहीं लेता। और इस सत्यता का प्रमाण उन शिक्षासंस्थाओं में मिलता है जहां छात्रों के व्यक्तित्व के विकास पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता और जो छात्रों को भिन्न भिन्न परीक्षाओं में पास कराना ही केवल मात्र अपना उद्देश्य बना लेती हैं। ऐसी संस्थाओं में जहां पढ़ने के अतिरिक्त शिक्षा सम्बन्धी अन्य कार्य बहुत कम होते हैं, वहां उद्योगी और उत्साही अध्यापक स्कूल और कालिज से बाहिर पैसा कमाने के लिए प्रेरित होते हैं।

कभी कभी संस्था का कोई दोष नहीं होता। यदि अध्यापक संस्था के लिए कार्य करना चाहे तो कर सकता है और यदि वह न करना चाहे तो उसकी वैयक्तिक आदतों और परिस्थितियों को देखना पड़ेगा। उसका काम बासी हो गया है और वह उस में किसी प्रकार की नवीनता और ताज़गी लाने का इच्छुक नहीं। क्योंकि वह जवानी की अभिरुचि खो बैठा है। ऐसा अध्यापक अपना समय सोने या स्कूल से बाहिर पैसा बनाने में व्यतीत करता है या ऐसा अध्यापक जिसके परिवार पर आर्थिक संकट आ पड़ा है और वह पैसा जोड़ने के लिए अपने व्यवसायिक कार्यों की अवहेलना करने के लिए मजबूर है। कभी ऐसा भी होता है कि कोई युवक अध्यापक अत्यन्त निर्धन परिस्थितियों में पैदा होता है। वह ऋण लेकर ही अपनी शिक्षा जारी रखने के योग्य है। कुछ समय के लिए वह अध्यापक हो जाता है। उस पर भारी बोझ होता है जिससे उसे मुक्त होना होता है। ऐसी परिस्थितियों में वह बाहर पैसा जोड़ने के लिए

अपना व्यवसायिक समय के चुराने के लिए मजबूर हो जाता है। कभी कभी एक अध्यापक अन्य कई स्थानों पर असफल होने पर इस व्यवसाय में आ कूदता है जिसके लिए वह सच्चा शौक नहीं रखता। एक शिक्षासंस्था में ऐसा व्यक्ति तुच्छतम है। एक और प्रकार का अप्रिय व्यक्ति वह है जिसकी सञ्चयप्रवृत्ति बड़ी बलवती है और जो अध्यापक होने पर भी उस पर नियन्त्रण नहीं कर सका। वह सादा और मध्यम अवस्था का जीवन बिताने के लिए उद्यत नहीं। वह अपनी कक्षा को भारत में दुर्भिक्षों के इतिहास पर पाठ पढ़ाते हुए फोर्ड के खज़ानों के सपने लेता है। ऐसा व्यक्ति अपने वेतन से चाहे वह कितना अधिक क्यों न हो कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकता।

जब अध्यापक पैसा जोड़ने के लिए उपरिलिखित नमूनों में से किसी एक को अपना लेता है तो वह एक शिक्षा संस्था के लिए ख़तरा बन जाता है। क्योंकि उसे उससे बहुत कम प्रेम होता है। कई प्रकार के मार्ग हैं जिन से वह अपनी धन सञ्चय की उत्कंठा को सन्तुष्ट कर सकता है। उन में से एक स्कूल से बाहिर ट्यूशन कार्य है। अध्यापकों की अधिक सहायता के लिए शिक्षा नियम संहिता (एजूकेशनल कोड) एक या दो ट्यूशनों की आज्ञा देती है। किन्तु इस सहायता से सन्तुष्ट न होकर कई अध्यापकों को अपने स्थानों पर नियमित कक्षायें चलाते देखा गया है। वे स्कूल में अपने कर्तव्य की ओर ध्यान नहीं देते और छात्रों को ज़बरदस्ती अपनी ट्यूशन रखने के लिए बाध्य करते हैं। यह एक प्रकार के अध्यापक हैं जिन पर किसी शिक्षासंस्था का मुख्याध्यापक, यदि वह ध्यान रखे तो सुगमता से नियन्त्रण कर सकता है।

अन्य कार्य जो स्वर्णलोलुप अध्यापक किया करते हैं वह है

पुस्तकों का लिखना। वह पुस्तकें जो वे लिखते हैं न तो वे उनके अनुसन्धान या बड़े विचार का परिणाम होती हैं और न ही किसी वास्तविक और स्थिर योग्यता की होती हैं। वे केवल सहायक पुस्तकें, कुञ्जियां, टीकायें और खुलासे लिखते हैं जिनका उपयोग एक विशेष स्थान और विशेष समय के लिए सीमित होता है। वह पुस्तकें एक या दो परीक्षाओं के लिए काम आती हैं और पुनः अपनी कुदरती मौत मर जाती हैं और इसी तरह उनका स्थान वैसी ही अन्य पुस्तकें ले लेती हैं। इस प्रकार का धनोपार्जन अध्यापक और छात्र दोनों पर दुष्प्रभाव डालता है। वे अध्यापक जो इधर उधर से कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा एकत्रित करके पुस्तकें प्रस्तुत करते रहते हैं। वे समय की दौड़ के साथ अपनी स्वाभाविक विचार शक्ति खो बैठते हैं। यदि प्रकृति ने उन्हें कुछ मानसिक अथवा बौद्धिक उपहार प्रदान किये हैं तो वे प्रमाणित कोषों (डिक्शनरियों) व पुस्तकों के परामर्श के साधारण भाव पर कुर्बान हो जाते हैं। छात्रों के लिए ये पुस्तकें अत्यधिक अहितकर हैं। वे बनी बनाई चीज़ के ग्रहण करने के अभ्यस्त हो जाते हैं। और वे यह नहीं जानते कि अपने आप विचार करने का क्या अभिप्राय है? इस प्रकार से शिक्षा के मौलिक उद्देश्य का ख़ून हो जाता है।

यह धनोपार्जन की प्रथा छूत के रोग का एक अत्यधिक रोचक उदाहरण प्रस्तुत करती है। एक व्यक्ति की एक पुस्तक में सफलता दूसरे को दूसरी पुस्तक लिखने को उकसाती है और दूसरे की सफलता तीसरे को तथा इसी प्रकार आगे अन्य व्यक्तियों को उत्साहित करती रहती है। और यहां तक कि यह प्रस्तावना जुकाम की तरह एक दूसरे को लगती हुई कई स्थानों पर अत्यन्त गम्भीर व्यक्तियों को भी प्रभावित कर लेती है। यहां प्रत्येक स्थान पर भिन्न

भिन्न सम्प्रदायों और जातियों के अपने अपने स्कूल और कालिज हैं। यदि किसी सम्प्रदाय का व्यक्ति कोई पुस्तक लिखता है तो स्वभावतः पुस्तक की बिक्री उस सम्प्रदाय से सम्बन्धित स्कूलों तक सीमित रहती है। व्यापारिक दृष्टिकोण से यह बात सर्वथा असन्तोषजनक है, इस लिए दूसरे सम्प्रदाय के अध्यापकों को पुस्तक के मुख पृष्ठ पर नाम दिये जाने और उस पुस्तक से होने वाले लाभ के अच्छे भाग का प्रस्ताव किया जाता है। जिससे दूसरे सम्प्रदाय के स्कूलों में भी वह पुस्तक चलने लग पड़ती है।

कई हैडमास्टर अपने आधीन काम करनेवाले अध्यापकों की सहायता से प्रायः स्कूल में पढ़ाये जाने वाले सभी विषयों पर पुस्तकें लिखते हैं। जिन्हें वे केवल अपने स्कूलों में ही लगाते हैं। ऐसी पुस्तकें अपने गुणों अथवा श्रेष्ठता के कारण नहीं बिकतीं प्रत्युत वह व्यक्तियों, प्रकाशक फ़र्मों और सम्प्रदायों के प्रभाव के कारण बिकती हैं। परिणामस्वरूप प्रायः अत्यन्त अनुपयोगी पुस्तकें लगती रहती हैं।

जब एक बार धन सञ्चय की यह दौड़ आरम्भ हो जाती है तो निश्चय ही इसका निरोध कठिन होता है और शिक्षा की इस प्रकार आवश्यक रूप से हानि होती है। हमारा इन सब बातों के लिखने का अभिप्राय यह कदाचित् नहीं कि हम इस प्रकार की बातों के निरोध के लिए अध्यापकों को स्वेच्छित निर्धनता का उपदेश करते हैं। निस्सन्देह अध्यापकों को अपने अच्छे वेतन और अधिक सुख की मांग का प्रचार करने का प्रत्येक अधिकार है किन्तु उचित सुख की इच्छा और पुरातन राजाओं के ऐश्वर्य की कामना में बड़ा अन्तर है। एक अध्यापक को मानसिक शान्ति चाहिए जो कि सन्तोष का

फल है। यदि उसका हृदय हर समय धन प्राप्ति के लिए नित नई आयोजनाओं से दग्ध है तो वह अपने व्यवसाय से निष्कपट नहीं। सुख और विलास के मध्य एक रेखा है। वही रेखा इन दोनों के मध्य प्रत्येक अध्यापक ने खींचनी है और यही उसके व्यवसाय का सब से बड़ा भाग है।

आठवां अध्याय

काम प्रवृत्ति

जिन स्वाभाविक प्रवृत्तियों को साथ लेकर मनुष्य ने जन्म लिया है उन में काम प्रवृत्ति का बड़ा महत्व है। क्यों कि इस प्रवृत्ति का मनुष्य के अचेत और सचेत दोनों प्रकार के मन के बड़े भाग पर अधिकार है। और काम प्रवृत्ति के उपद्रव अध्यापक के लिए प्रबल विघ्नों में से एक हैं। अतः उस अध्यापक के लिए, जो शान्त जीवन व्यतीत करना चाहता है, इसकी विवेचना अत्यन्त उपयोगी है।

यह एक अच्छे युग का चिह्न है कि हम काम प्रवृत्ति पर निर्भय होकर विवेचना कर सकते हैं। पुरातन विरोध धीरे धीरे हट रहा है। और आज जो हमें स्वतन्त्रता मिली है वह कुछ विशेष प्रकार की चपलता या ओछापन भी साथ लाई है जिसकी ओर उन लोगों को जिनके हृदय में जाति-हित है शीघ्र ध्यान देने की आवश्यकता है। वर्तमान व्यक्ति सभी प्राचीन बातों के विरुद्ध कहने को एक आम आदत रखता है। प्राचीन प्रथाओं में से जिस बात का वर्तमान मनुष्य विरोध करता है वह है सर्वदा काम प्रवृत्ति पर विशेष प्रतिबन्ध। वह विचार करने की इस नवीन रीति में इतना सरगर्म है कि वह इस प्राचीन प्रथा में कोई बुद्धिमत्ता पाने का प्रयत्न ही नहीं करता। वह काम मर्यादा को अप्रमाणित पाखण्ड समझता है। वह प्रत्येक बात के स्वाभाविक कारणों के अनुसन्धान के लिए प्रयत्न करता है। यही व्यवहार वह चरित्र और धर्म से भी करता है किन्तु वह प्रायः हानिकारक परिणाम पर ही पहुँचता है। ऐसे व्यक्ति की राय में सभी प्रकार की काम स्वतन्त्रता उचित है

क्योंकि सभी चरित्र अपने युग तथा परिस्थिति के अनुकूल होते हैं। चरित्र मूल में परिस्थिति अनुकूल क्यों न हो किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि इसका कोई सार या मूल नहीं और इसको आसानी से धुतकारा जा सकता है। किसी वस्तु का मूल उसके मूलय से भिन्न होता है। एक वस्तु किसी भी परिस्थिति में जन्म ले सकती है किन्तु वह परिस्थिति उस वस्तु के महत्व को, यदि कोई है, कम नहीं कर सकतीं।

उपरिलिखित विचारों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को काम और उस पर लगे प्राचीन प्रतिबन्ध पर अवश्य विचार करना चाहिए।

फ्रॉइड अपनी पुस्तक "Civilization and its Discontent" "सभ्यता और उसकी अशान्ति" में मनुष्य के कष्टों की विवेचना करता है। उसका अनुसन्धान यह है कि समाज काम-प्रवृत्ति के अनुचित दबाव के सम्बन्ध में अत्यन्त कठोर रहा है। यदि मनुष्य आनन्द से रहना चाहता है तो उसे मूल प्रवृत्तियों, विशेषतया काम प्रवृत्ति को अधिक स्वतन्त्रता देनी चाहिए। फ्राइड के इस परिणाम ने युवकों को ऐसे विचारस्वातन्त्र्य के सिद्धान्त का मार्ग दिखाया है जो हमारी सम्मति में सर्वथा अशुद्ध मनोविज्ञान है और ऐसा धर्म है जिसकी बुनियाद ग़लत है। यह विचारस्वातंत्र्य प्रसन्नता की ओर ले जायगा, यह बड़ी सन्दिग्ध सी बात है। पुरानी एक हिन्दुस्तानी कहावत है कि इच्छायें पूरी करने से पूरी नहीं होतीं। यह कहावत अपने में एक मनोवैज्ञानिक सच्चाई रखती है। इच्छायें, विशेषतया काम प्रवृत्ति सम्बन्धी, जितनी इनकी पूर्ति की जाये उतनी ही उत्तेजित होती हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि इच्छाओं की पूर्ति या सन्तोष नहीं करना चाहिए। प्रत्युत हमारा अभिप्राय यह है कि कहीं न कहीं हमें अवश्य रुकना

होगा। किन्तु त्याग फ्राइड के मतानुसार सभ्यता पर एक लानत सी है। फ्राइड का कथन है "यदि सभ्यता न केवल मनुष्य की काम-प्रवृत्ति प्रत्युत युयुत्सा की प्रवृत्ति का त्याग चाहती है तो हम समझ सकते हैं कि मनुष्य के लिए आनन्दप्राप्ति कितनी कठिन है। वास्तव में प्राचीन मनुष्य इस विषय में बहुत अच्छा था क्योंकि वह अपनी प्रवृत्तियों के निरोध के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता था" फ्राइड के ये विचार बड़े ख़तरनाक हैं। ये आसानी से धर्म और सच्चरित्र से छुट्टी का अच्छा बहाना बन सकते हैं। ये यथार्थ अथवा सत्य के परिचायक तो हैं किन्तु ये आदर्श नहीं हैं। हां, एक अचेत और असावधान व्यक्ति को इन शब्दों में बहुत कुछ मिल सकता है। निस्सन्देह फ्राइड महाशय कामप्रवृत्ति के बेलगाम और सर्वथा अनिरुद्ध विचार स्वातंत्र्य के उपदेशक या प्रचारक नहीं थे। किन्तु फ्राइड का उद्देश्य केवल कट्टर धर्मानुयाइता और दृढ़ मिथ्या विनय का विरोध था। वास्तव में फ्राइड ऐसे व्यक्ति थे जिनका यह विश्वास था कि मानसिक दुर्बलता का महान कारण कामशक्ति का अत्यधिक व्यय है।

अब तक कोई भी ऐसा वास्तविक सिद्ध, महात्मा और दार्शनिक व्यक्ति नहीं हुआ जिसने इच्छाओं, विशेषतया काम, के अनिरुद्ध सन्तोष अथवा पूर्ति का उपदेश किया हो। क्योंकि इस मन्तव्य की दृष्टि से समाज एक दिन भी जीवित नहीं रह सकता। कोई समाज ऐसा तजरुबा सहन नहीं कर सकता। बेलगाम आज़ादी उपद्रव और विप्लव की ओर धकेल देगी और जहां कहीं काम प्रवृत्ति को स्वतन्त्रता दी गई है वहां उसने सामाजिक विप्लव को जन्म दिया है। यह इतिहास का निर्णय है कि वहां बरबादी और सर्वनाश का नंगा नाच हुआ है।

काम भावना एक प्रवृत्ति है और परिणामस्वरूप स्वाभाविक उत्कंठाओं की जन्मदाता है। भूख भी स्वाभाविक है किन्तु केवल अन्धा भुक्खड़ ही अव्यस्थित और अनियमित खुराक को स्वीकार कर सकता है। क्योंकि ऐसी खुराक हमें जीवन सम्बन्धी कार्यों के अयोग्य बनाती है। सञ्चय की भावना स्वाभाविक है किन्तु कोई समाज निरवरोध सञ्चय की स्वतन्त्रता नहीं दे सकता। भय भी स्वाभाविक है किन्तु कोई व्यक्ति केवल इसी कारण से इसे अच्छा नहीं कहता है। ऐसी ही युक्ति काम प्रवृत्ति पर भी लागू होती है। मनुष्य की साधारण बुद्धि ने कभी काम प्रवृत्ति की अव्यवस्थित, अनियमित और सर्वथा स्वतन्त्र क्रियाशीलता को स्वीकार नहीं किया है। और यही वह बुद्धि है जिस ने मनुष्यता की रक्षा की है।

काम प्रवृत्ति का क्षेत्र अथवा सीमा अवश्य निश्चित कर लेनी चाहिए। जब एक समाज उसे लाइसैंस दे देता है तो उसका नाश हो जाता है। यही कारण है कि भूतकाल में सभी बड़ी बड़ी समाजों ने विवाह से पूर्व काम प्रवृत्ति की कम से कम उकसाहट पर बल दिया है। और इसी कारण ही हम स्वास्थ्य, कला और दर्शन विषय में उनकी सफलता के अब तक प्रशंसक हैं। भारत की प्राचीन बुद्धिमत्ता बलपूर्वक इस बात की घोषणा करती है कि वीर्य रक्षा जीवन है और वीर्य नाश मृत्यु है। अनविन ने अपनी पुस्तक "Sexual Regulation and Human Behaviour" में अस्सी प्राचीन जातियों का चित्र प्रस्तुत किया है। वह लिखता है कि सभी जातियों में उच्चतम बौद्धिक और सामाजिक शक्ति सुव्यवस्थित काम प्रवृत्ति से सम्बन्धित है। हम यहां उसका एक विस्तृत उद्धरण दिये बिना नहीं रह सकते और वह यह है कि "मनुष्य का स्वभाव ऐसा है कि जब वह समूहों में संचित होता है तो वह मानसिक और सामाजिक शक्ति के

प्रकाश की शक्ति प्राप्त करता है किन्तु इस अव्यक्त जीवन शक्ति के प्रदर्शन से पूर्व कुछ शर्तों का पूरा करना आवश्यक होता है—ये शर्तें आवश्यक संयम के सम्बन्ध में हैं। यदि आवश्यक संयम अधिक होगा तो सामाजिक शक्ति भी अधिक होगी और यदि आवश्यक संयम कम होगा तो सामाजिक शक्ति भी कम होगी और यदि आवश्यक संयम का सर्वथा अभाव होगा तो निश्चय ही सामाजिक शक्ति भी लुप्त होगी। यह गुप्त रूप में रहती है।" अनविन ने दो मौलिक नियमों का अन्वेषण किया है जो मनुष्य की सब समाजों पर लागू हैं। पहला यह कि "किसी भी भौगोलिक अवस्था में रहने वाले किसी समाज की अवस्था उस जाति की स्त्रियों और पुरुषों में सम्बन्ध की व्यवस्था पर आश्रित है।" दूसरा यह कि "कोई समाज उत्पादक सामाजिक शक्ति का प्रकाश नहीं कर सकता जब तक कि नई सन्तति पैतृक रूप से एक ऐसी सामाजिक पद्धति को प्राप्त न कर ले जिसके आधीन काम वासना के कम से कम अवसर प्राप्त होते हों। यदि ऐसी पद्धति प्रचलित रहे तो एक उच्चतम इतिहास का जन्म होगा जो कि मानवी जीवनशक्ति से शुद्ध होता रहेगा।" अनविन महाशय के ये सिद्धान्त आजकल के आनन्द के पिपासुओं को अनुरोधपूर्ण स्मरण करा रहे हैं कि व्यक्ति और जाति के स्वास्थ्य के लिए कामशक्ति का सुव्यवस्थित निरोध आवश्यक है। इन दिनों कामप्रवृत्ति के सम्बन्ध में ग़लत विचार खूब फैले हुए हैं। वर्तमान युवक प्रसन्नता से उन्हें ग्रहण कर लेता है और उनकी सहायता से विचार स्वातंत्र्य के सिद्धान्त सत्य सिद्ध करता है। काम की तुलना भूख से की जाती है और दोनों की सन्तुष्टि आवश्यक बतलाई जाती है किन्तु साधारण सा परीक्षण इस बात को स्पष्ट कर देगा कि यह तुलना झूठी है। भूख केवल अभिलाषा है किन्तु कामना प्रतिकारी भी है। यदि काम को

उकसाहट पर नियन्त्रण हो जाये तो काम की अभिलाषा वाले भाग का उपयोगी दिशा में परिवर्तन सरलता से हो जायेगा। इसके अतिरिक्त कामशक्ति के सन्तोष के बिना स्वस्थ और ओजस्वी जीवन तो सम्भव है किन्तु भूख के सन्तोष के बिना जीना असम्भव है।

काम-प्रवृत्ति की उकसाहट या तो मानसिक होती है या शारीरिक। शारीरिक उकसाहट ग़लत आहार, अधिक आहार, मद्य और अन्य मादक पदार्थों के सेवन, तंग या कसे हुए कपड़े, अत्यन्त गर्म बिस्तर, पूर्ण मूत्राशय, विशेषतया सोने से पूर्व, शारीरिक चमड़े की अस्वस्थ अवस्था के कारण स्थानिक खुजलाहट, आदि से पैदा होती है। मानसिक उकसाहट दर्शन, विचार, अश्लील मख़ौल, या बातचीत अथवा अश्लील पुस्तकों के अध्ययन से होती है। यह ख़याली पुलाव से तीव्र होती है। सावधानी और ध्यान तो शारीरिक उकसाहट से पूर्णतया छुटकारा दिला सकते हैं किन्तु सभी प्रकार की मानसिक उकसाहट से मुक्ति कठिन है। हां एक प्रकार की ऐसी पवित्र अवस्था के विकसित होने पर, जिसकी प्राप्ति शिक्षण से पूर्णतया सम्भव है, मानसिक उकसाहट से भी मुक्ति संभव है। यदि ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी जाय जिस में मानसिक और शारीरिक उकसाहट न हो तो वहां काम प्रवृत्ति की उत्तेजना नहीं होती। किन्तु यदि आप एक बार काम प्रवृत्ति के उकसाने वाली परिस्थितियां पैदा कर दें तो आप आत्मनियन्त्रण के उपदेश का अधिकार नहीं रखते। यदि आप दबाव डालेंगे तो इससे मानसिक और शारीरिक अव्यवस्था पैदा हो जायेगी। आज का युवक काम प्रवृत्ति की शीघ्र सन्तुष्टि के लिए उत्कंठित रहता है क्योंकि वह प्रायः अत्यन्त उत्तेजित रहता है। कामप्रवृत्ति के आवश्यक स्तम्भ हैं परिस्थिति और उकसाहट। यदि आप इन पर नियन्त्रण कर सकते हैं तो कामप्रवृत्ति पर स्वयमेव नियन्त्रण हो जायेगा।

अब प्रश्न यह है कि एक साधारण व्यक्ति के जीवन में काम प्रेम के उपभोग का क्या स्थान हो। कामप्रवृत्ति की दृष्टि से एक व्यक्ति का जीवन दो भागों में विभक्त होना चाहिए। विवाह से पहले का जीवन और विवाह के बाद का जीवन। वास्तव में काम प्रेम विवाह से आरम्भ होना चाहिए। इसका विकास प्रेम भावना के अन्य किसी भी रूप की भाँति विकसित होकर अपने जीवन साथी से सम्बन्धित भावना के पूर्णानन्द के अनुभव के लिए एक चिरस्थायी स्वभाव बन जाना चाहिए। ऐसी भावना पैदा हो सकती है किन्तु यदि इसका पोषक और जीवनदाता कोई चारित्रिक आदर्श नहीं तो जल्दी या देर से निर्बल हो जाती है और ठण्डा पड़ जाती है। उपरोक्त आदर्श के न होने पर काम ज़ोर पकड़ता है और ख़याली पुलाव उसे खूब भड़काता है। इस प्रकार यह विधि समाप्त नहीं होती चाहे बाल सफ़ेद हो जायें और चाहे हड्डियां दुखने लगें।

विवाह से पहले का जीवन पूर्ण ब्रह्मचर्य का होना चाहिए। विवाह से पूर्व संयम अभीष्ट वस्तु है। प्राचीन समाजों ने इस बात पर बल दिया है और वे सत्यता पर थे। किन्तु विवाह से पूर्व का संयम भी केवल वहां सम्भव है जहां का वातावरण उत्तेजक नहीं और जहां विवाह के लिए आयु और सम्भावना प्रायः निश्चित ही है। प्राचीन हिन्दुओं ने एक योजना बना रखी थी जिससे वे विवाह से पूर्व और पश्चात काम भावना को नियमित रख सकते थे। विवाह से पूर्व संयम लड़कों और लड़कियों दोनों के लिए आवश्यक था। किन्तु यह संयम कोई ऐसा बन्धन नहीं था जो उनकी इच्छा के बिना उन पर ठोंसा जाता था। प्रत्युत एक ऐसा वातावरण पैदा कर दिया जाता था जिससे उनके अन्दर स्वेच्छित रूप से ऐसी आदत पैदा हो जाती थी। लड़के पांच छः वर्ष की आयु में घर की कलकल और

कोलाहल से दूर एक अध्यापक को सौंप दिए जाया करते थे । वे अपने गुरु के आश्रम में २५ वर्ष तक शिक्षा, त्याग और प्रकृति के साहचय में सख्त और सादा जीवन व्यतीत किया करते थे। उनकी ख़ुराक विशेष रूप से अनुत्तेजक हुआ करती थी। पोशाक साधारण तथा सामान्य और आम व्यवहार ओजस्वी होता था । काम प्रवृत्ति उन्हें पीड़ित नहीं किया करती थी क्योंकि उसके लिए कोई अवसर ही नहीं था। मानसिक विक्षोभ विकसित नहीं होता था क्योंकि तत्कालीन युवक कामभावना का दमन नहीं करते थे प्रत्युत वे इसे शोध लेते थे। उस समय इस प्रवृत्ति का शोधन भी एक कौशल समझा जाता था जो प्रत्येक हिन्दू को वर्षों के अभ्यास के कारण बिना किसी विशेष प्रयत्न के प्राप्त हो जाता था। २५ वर्ष के युवक का विवाह १६ वर्ष की ऐसी युवति से हुआ करता था जो इस बीच अपने गृह पर एक योग्य गृहस्थिनी होने की शिक्षा पाया करती थी। विवाह प्रायः आवश्यक ही था। इस प्रकार का जोड़ा विवाह से पूर्व एक ऐसी अध्यात्मिक और चारित्रिक शिक्षा प्राप्त कर लेता था कि उन्हें कभी काम उन्मत्तता का कष्ट नहीं होता था और उस समय काम सम्बन्धी बहुत कम दुर्घटनायें हुआ करती थीं।

समय बदलता रहता है और उसके प्रतिरूप परिवर्तन भी होते रहते हैं। प्रत्येक लम्बे डग के साथ जो वर्तमान सभ्यता ले रही है प्राचीन बुद्धिमत्ता का एक न एक भाग झड़ता जा रहा है। सभ्यता भौतिक पदार्थों से जितना अपने आप को लादती जाती है उतना ही वह उनके मानव हित के लिये प्रयोग करने की शक्ति और कौशल से विहीन होती जाती है। आज हमारे युवक अपना वास्तविक आश्रय खो बैठे हैं और नवीन विचारों के भंवर में फंसे हुए हैं। उनकी

बहुत बड़ी संख्या पुरानी सभ्यता पर किए गए इस आक्रमण को स्वाभाविक घटना कह कर युक्ति संगत सिद्ध करती है। और यह सिद्ध करने के लिए कि "काम प्रवृत्ति पर विचार स्वातन्त्र्य" एक स्वस्थ परिपाटी है" फ्रॉइड महाशय की सहायता का आश्रय लेते हैं, ताकि समाज मानसिक औषधालय में बढ़ते जाने वाले अपने रोगी व्यक्तियों के बोझ से दब न जाये। आज का युवक एक अशुद्ध हेतुवाद के पंजे में जकड़ा हुआ है। जो कुछ भी स्वाभाविक या प्राकृतिक है आवश्यक नहीं कि वह अच्छा भी हो। जो रेखा मनुष्य को पशु से अलग करती है वह है विवेक, और चारित्रिक आध्यात्मिकता का महात्म्य। जब इसका मनुष्य में अभाव हो जाता है तब मनुष्य और पशु में भी कोई अन्तर नहीं रहता। और यही वह कार्य है जिसे पूर्ण करने के लिए आज का युवक तुला हुआ है। सरल प्रकृति के माता पिता और अध्यापक समय की लहर के साथ ही चल रहे हैं। प्राचीन विचारों के लकीर के फ़कीर व्यक्ति मारे क्रोध के घूंसे कस रहे हैं। उन्नतिशील और सावधान व्यक्ति भयभीत हैं। हर दिशा से यह पुकार हो रही है कि "इन नवयुवकों को काम सम्बन्धी शिक्षा दी जाये" किन्तु कोई यह दबी आवाज़ से भी नहीं कहता कि "इनको दिन प्रतिदिन बढ़ने वाली अस्वस्थ उत्तेजना से मुक्त कराया जाये।" वह वातावरण, जो कामप्रवृत्ति की सुव्यवस्था और नियन्त्रण का मूल कारण था, शीघ्रता से लुप्त हो रहा है और उसके स्थान पर ऐसा वातावरण पैदा हो रहा है जो दायें बायें से काम की ऐसी चिंगारियां उगल रहा है, जो उठते हुए युवकों को उत्तेजित कर रही हैं। अव्यवस्थित खुराक, कामुक और अपवित्र वार्तालाप, सिनेमा का पागलपन, पोशाक के विविध रूप जो कि अत्यन्त काम उत्तेजक हैं, धर्म प्रवृत्ति के अभाव से सहायता पाकर ऐसे वातावरण में जहां

मर्यादा का लोप हो चुका है और जहां सतीत्व और शुद्धता धार्मिक पाखण्ड समझी जाती हैं और जो प्लेग के चूहे की भाँति दूर फैंकी जा रही हैं।

इस प्रकार के कसे हुए वातावरण में कौन पवित्रता और आत्मसंयम का उपदेश कर सकता है। कौन रेत के कणों से रस्से बना सकता है और कौन दलदल में गुलाब के फूल उगा सकता है।

नवीन परिस्थितियों ने काम नियन्त्रण सम्बन्धी नई कठिनाइयों को जन्म दिया है। विवाह अब वह पवित्र कर्तव्य नहीं रहा, जिसे माता पिता ने संसार छोड़ने से पूर्व निश्चित समय में पूर्ण करना है। भविष्य में आर्थिक कठिनाइयों के कारण विवाह में देर हुआ करेगी और प्रतिवर्ष उन लोगों की संख्या बढ़ती जायेगी जो विवाह सम्बन्धी ख़र्चों के अयोग्य होंगे। और विवाह से पूर्व के समय को अवधी निश्चित करना कठिन हो जायगा। ऐसी अवस्थाओं में काम प्रवृत्ति की पवित्रता के लिए विशेष प्रयत्न की आवश्यकता होगी। किन्तु वे प्रयत्न होने ही चाहिएं।

अत्यन्त नवीन विचारक चारित्रिक आदर्शों की कठोरता को कम करने की वकालत करते हैं और यह चाहते हैं कि मनुष्य इस विचार से अपना जीवन आरम्भ करें कि वे पशु हैं। यदि यह धारणा स्वीकार कर ली जाये तो संस्कृति के महल को ईंट से ईंट बज जायगी। मनुष्य को पाशविक स्थिति से उठने में अगणित शताब्दियां लगी हैं किन्तु भौतिक दृष्टिकोण ने उसे ऐसा सरल प्रकृति का बना दिया है कि वह अब उन आदर्शों पर स्थित रहना अपने लिए बड़ा कठिन समझता है जिनको उसने स्वयं जन्म दिया था और

जिनका वह अब तक अभ्यास करता रहा है। वह अब पीछे जाना चाहता है। प्रतिदिन जो बीत रहा है वह अपने चारित्रिक आदर्शों को थोड़ा बहुत छोड़ता जा रहा है और धीरे धीरे उसके स्थान पर पाशविकता को अपनाता जा रहा है। वह समय अब दूर नहीं जब कि सम्पूर्ण चारित्रिक आदर्श त्याग दिये जायेंगे और मनुष्यता का चिह्न भी नहीं रहेगा। हमें अब भी विश्वास है कि यदि वर्तमान हेतुवाद का विश्लेषण करें और उसकी निन्दा करें तथा उसके स्थान पर विवेक को अवसर दें तो यह अवस्था भी सम्भल सकती है। हमारी सम्मति में मनुष्य की पाशविक वृत्ति का उचित सन्तोष और इसके साथ साथ चारित्रिक आदर्शों का बनाये रखना सम्भव है।

शिक्षा की दृष्टि से काम प्रवृत्ति की ओर अध्यापक का व्यवहार विशेष महत्व रखता है। चेत अथवा अचेत रूप में उसे भावी जाति पर अपना प्रभाव डालना है। सर्वप्रथम उसका अपना कामुक जीवन सुव्यवस्थित होना आवश्यक है। वह गृहस्थी हो अथवा उसका जीवन कामदोष और काम विकारों से दूषित न हो। यदि वह अपने अन्दर सामान्य पवित्रता की स्थिति पैदा करना चाहे तो यह उसके लिए असम्भव नहीं। उसे ऐसा होने के योग्य अवश्य होना चाहिए। यह उसके व्यवसाय का एक अङ्ग है। उसका गौरव इसी पर निर्भर है। सत्कार्यों में संलग्न जीवन कामपीड़ा के लिए अपूर्व औषध है। जोड का कथन है कि "यदि हम सिद्ध मुनियों को परम्परागत बुद्धिमत्ता पर विश्वास रखें तो हमें आनन्द का रहस्य किसी उचित विषय पर दुष्कर परिश्रम करनेवाली आन्तरिक शक्तियों के सतत अभ्यास में मिलेगा।" हमारी दृष्टि में संगीत, चित्रकारी, साहित्य और अन्य कलायें, खेलें, व्यायाम, बालकों और मातृभूमि का हितचिन्तन आदि

ऐसे उचित विषय हैं। वास्तव में वे सभी सारपूर्ण कार्य, जो किसी व्यक्ति को पूर्णतया संलग्न रखते हैं, उचित विषय कहे जा सकते हैं, क्योंकि इस प्रकार इन से मनुष्य के पास कामलोलुपता या प्रलोभन के लिए थोड़ा समय रह जाता है। उपरोक्त रोचक विषयों के बिना काम-प्रवृत्ति युवक और वृद्ध सभी को लपेट लेती है।

अध्यापक का व्यवहार काम प्रवृत्ति के प्रति आरोग्यकर होना चाहिए। उसे काम की यंत्र रचना और उसके नियंत्रण की संभावना से पूर्णतया परिचित होना चाहिए। काम प्रवृत्ति दूषित नहीं और मिथ्या विनय को न तो चारित्रिक और न ही मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से उचित कहा जा सकता है किन्तु अन्त में काम प्रवृत्ति के सम्बन्ध में युक्तिसंगत स्थिति-पालन ही सदा लाभदायक होता है और वैयक्तिक तथा सामाजिक स्वास्थ्य का वर्द्धक होता है। अध्यापक आनन्द से प्रफुल्लित स्वास्थ्य की प्राप्ति और स्थिरता के लिए प्रत्येक प्रयत्न करे। यह स्वास्थ्य एक व्यक्ति को वह सुन्दरता प्रदान करता है जो न तो पौडरों और दूसरी सजावट बनावट की वस्तुओं से प्राप्त हो सकती है और न ही ऐसी पौष्टिक औषधियों से जो दिन प्रतिदिन मार्कीट में आ रही हैं।

नवां अध्याय

अन्य प्रवृत्तियां

शिशु रक्षण

शिशु रक्षण प्रवृत्ति उन आवश्यक प्रवृत्तियों में से है जो जीवन को जीने योग्य बनाती हैं। यह वह प्रवृत्ति है जो अन्य हीन जीवधारियों की भाँति मनुष्य के विकास को आकर्षक और सुगम बनाती है। इसके साथ एक संवेग होता है जिसे सुकुमार संवेग कहते हैं। उत्पादक प्रवृत्ति जातियों की जन्मदायक है और शिशु रक्षण प्रवृत्ति एक सौम्य स्पर्श और जोश प्रदान करती है जो जीवधारियों की वृद्धि में सहायक होते हैं। यह सम्भव है कि एक व्यक्ति सन्तान उत्पत्ति से इन्कार कर दे या न कर सके किन्तु कभी न कभी वह अपनी शिशु रक्षण प्रवृत्ति के सन्तोष के लिए अपने अन्दर एक ज़ोरदार प्रोत्साहन अवश्य अनुभव करता है। उस अवस्था में या तो वह व्यक्ति दूसरों की सन्तान को गोद में ले लेता है या समस्त संसार के बालकों के हित चिन्तन के लिए अपने आप को समर्पित कर देता है। हमें यहां शिशु रक्षण प्रवृत्ति के विषय में शिक्षक शिक्षणालय सम्बन्धी कुछ बातें कहनी हैं। हम यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि शिक्षक बलवती शिशु रक्षण प्रवृत्ति के बिना छात्रों में सफलता प्राप्त कर सकता है। यह बात विशेष रूप से प्राइमरी स्कूलों के विषय में सदैव सत्य ही है। इसी लिए हम ने किसी अन्य स्थान पर यह लिखा है कि अध्यापक विवाहित होने चाहिएं और प्राइमरी स्कूलों के लिए प्रायः वही अध्यापक ही केवल सफल होते हैं जिनकी अपनी सन्तान होती है। तभी

तो उनका हृदय स्वाभाविक रूप से छोटे बालकों की ओर प्रवृत्त होता है।

बुरा स्वभाव शिशु रक्षण प्रवृत्ति की क्रियाशीलता का अपहरण करता है। एक अध्यापक में बुरा स्वभाव प्रायः प्रभुता प्रवृत्ति के निरुद्ध होने से पैदा होता है। अध्यापक जो अपने सम्बन्ध में झूठी आशायें रखता है जब कभी वह यह अनुभव करता है कि छात्रों के हाथों उसकी कल्पना को चोट लगी है तो वह नन्हें मुन्नों को डराने कम्पाने के लिए शारीरिक दण्ड और घूरने इत्यादि की विधियां प्रयुक्त करता है। अध्यापक यह कह कर कि वह उपद्रवियों का उनके हित के लिए सुधार कर रहा है, अपने कार्य को उचित सिद्ध करता है किन्तु यदि वह अपने आप से निष्कपट हो और वैज्ञानिक भावना से अपनी क्रियाओं के विश्लेषण का प्रयत्न करे तो उसे यह ज्ञात होगा कि उसके इस उद्वेग का कारण वह स्वयं था। और जो दुःख या पीड़ा उसने दी है उसका लक्ष्य बालकों के सुधार या हित का आदर्श नहीं था। इसी कारण उसकी प्यार और रक्षण प्रवृत्ति का निरोध हो गया। असन्तुष्ट काम प्रवृत्ति भी शिशु-रक्षण प्रवृत्ति के उचित कार्य में बाधा बनती है और छात्रों के प्रति अनुचित कठोरता और प्रायः अवहेलना का मार्ग दिखाती है। अतः शिशु रक्षण प्रवृत्ति की क्रियाशीलता के लिए अन्य सभी प्रवृत्तियों का प्राकृतिक रूप में कार्य करना आवश्यक है और इसके बिना वे प्रवृत्तियां भी एक फीका और अरम्य संसार ही पैदा करेंगीं।

एक अध्यापक जो दिन प्रतिदिन अपनी शिशु रक्षण प्रवृत्ति का प्रकाश नहीं करता वह न केवल अपने आधीन शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों के स्वस्थ विकास के मार्ग में बाधायें पैदा करता है प्रत्युत

दुस्साध्य छात्रों के हाथों स्वयं भी दुखी होता है। एक दुस्साध्य छात्र घर पर निरोधी पिता या माता के कारण प्रायः दुस्साध्य बनता है। जब वह स्कूल में आता है तो उसके अचेत मन में अध्यापक माता पिता के प्रतिनिधि रूप में होते हैं। एक अध्यापक उस सजीव प्रेम या अनुराग के बिना जो शिशु रक्षण प्रवृत्ति उसे प्रदान करती है अपने लिए महान दुःख पैदा करेगा। और दूसरी ओर इस प्रवृत्ति के साथ स्वेच्छाचारी और ऊधमप्रिय छात्रों को भी अपनी ओर आकर्षित कर लेगा। अतः शिशु रक्षण प्रवृत्ति की शक्ति अध्यापक की सफलता और असफलता में महान स्तम्भ है।

हंसना

मैकडूगल हंसने को मौलिक प्रवृत्तियों में गिनता है। चाहे हम इस बात को न मानें किन्तु हम एक सफल अध्यापक के लिए हंसने को एक महत्वशाली मूलतत्व गिने बिना नहीं रह सकते। हंसना यदि वह उचित अवसर पर प्रकट हो तो पाठ की थकान को दूर करता है और मूढ़ लड़कों को यह अनुभव कराता है कि वे कक्षा का भाग हैं और सुन्दर कल्पनाओं में मस्त अन्तिम बैंचों पर बैठे हुए छात्रों को चौंका देता है। एक नीतिज्ञ अध्यापक यथा अवसर हंसने से कभी नहीं हिचकचाता किन्तु यदि हंसना रुचिर भावना से न हो तो वह अपने लक्ष्य का अपने आप खून कर बैठता है।

हंसने का भी निमित्त और विधि होती है। अध्यापक को यह स्मरण रखना चाहिए कि वह छात्रों के साथ हंस रहा है न कि उन पर हंस रहा है। और छात्र भी उसके साथ हंस रहे हैं न कि

उस पर हंस रहे हैं। वह अध्यापक, जो छात्रों के साथ हंस सकता है और छात्र उसके साथ हंस सकते हैं, उसके शिष्य सदा उसका स्वागत करते हैं और अपने हृदय में स्थिर स्थान देते हैं। उन्हें अपनी बैंचों की कतारें और सहपाठी तो समय की गति के साथ भूल जाते हैं किन्तु ऐसे अध्यापक का चित्र उनके स्मृतिपट से नहीं मिटता। उस का हंसना स्वाभाविक और अवसरानुकूल होता है और प्रत्येक छात्र उससे आनन्दित होता है। यदि हंसी किसी निश्चित छात्र पर की जाये तो उसका उद्देश्य प्रायः सामान्य उपहास ही होता है। ऐसा अध्यापक जो इस प्रकार की हंसी का उपयोग करता है, देखेगा कि शायद ही सम्पूर्ण कक्षा इस हंसी में उसका साथ देगी। कुछ तो खिलखिला पड़ेंगे, कुछ मुस्करा देंगे, कुछ ऐसे भी होंगे जो चुप रहेंगे। यदि अध्यापक में चुहिया की बुद्धिमत्ता भी है तो वह उस प्रभाव का तुरन्त अनुभव कर लेगा जो उसने अपनी कक्षा पर डाला है और निश्चय ही वह इसे नहीं दुहरायेगा। कोई ऐसी कक्षा और संघ नहीं हो सकता जो अपने किसी सँदस्य पर चाहे वह कैसा ही क्यों न हो किये गये उपहास को पसन्द करे। अध्यापक की अचेत या सचेत कठोरता, शीघ्र प्रकट हो जायेगी और छात्रों के हृदय में उसके प्रति घृणा पैदा कर देगी।

ऐसे भी अध्यापक देखे गये हैं जो कभी नहीं हंसते। वह इस बात का विशेष ध्यान रखते हैं कि कहीं सहसा उनके लब उनके सम्मुख कुछ नीचे बैठे हुए नन्हें बालकों के सम्मुख खुल न जायें। ऐसे अध्यापक मनुष्य जाति के उज्वल मुख पर कालक हैं और एक शिक्षणालय में इस प्रकार जीवन व्यतीत करते हैं जैसे कि वे किसी मातमी जलूस में चल रहे हों। यदि किसी सौभाग्यशाली दिन प्रयत्न

करने पर भी वे अपनी कसम तोड़ देते हैं तो सम्पूर्ण संस्था में इस हंसी की चर्चा रहती है। ऐसे अध्यापकों की मानसिक अवस्था कुछ विचित्र सी है। साधारणतया वे लोग कोई बड़े मेधावी नहीं होते। कक्षा के कमरे से बाहिर अपने मित्रों में वे प्रायः प्रसन्न रहते हैं किन्तु जब वे कमरे के अन्दर प्रविष्ट होते हैं या अपने छात्रों से मिलते हैं तो तुरन्त तेवरियां चढ़ा लेते हैं और उनकी आवाज़ में कठोरता और रोब पैदा हो जाता है। वे लोग इस प्रकार अचेत रूप से अपनी अयोग्यता और आत्मनिर्भरता के अभाव पर पर्दा डालने का प्रयत्न करते हैं। उनका यह पर्दा स्वयं उन्हें धोखा देता है न कि संसार को। उन से भय होता है, उनकी बातें होती हैं किन्तु उन से कभी कोई प्रेम नहीं करता और न ही उनका कोई मान करता है। उन्हें चाहिए कि वे अपना यह घूंघट उतारें तब उनको एक नवीन जगत के दर्शन होंगे। कुछ अध्यापक अत्यधिक हंसी मज़ाक से अपनी त्रुटियों और कमियों पर पर्दा डालते हैं। अपनी कक्षाओं को अपनी बुद्धिमत्ता से प्रभावित न कर सकने पर प्रायः वे अचेत रूप में उन्हें हंसी मज़ाक में लगाये रखते हैं। छात्र उनके पाठों को हास्य तथा दिल्लगी समझते हैं और इसी लक्ष्य से उन में उपस्थित होकर हंसी की हा-हा में सम्मिलित होते हैं। छात्र प्रायः ऐसे अध्यापकों का मज़ाक उड़ाते हैं किन्तु ऐसे अध्यापक वास्तविकता जानने का निश्चित प्रयत्न नहीं करते। प्रत्येक अध्यापक हंसने और मुस्कराने का हुनर सीखे क्योंकि यह एक भूषण है जो उसके कार्यक्रम को रोचक बनाता है।

हम ने पिछले पृष्ठों में मनुष्य की उन मुख्य प्रवृत्तियों पर विवेचना की है जो अध्यापक के व्यवसाय से सम्बन्ध रखती हैं।

नैसर्गिक प्रवृत्तियां मनुष्य के कार्य की प्रेरक शक्तियां हैं। सभ्य समाज में ये प्रवृत्तियां आदर्शों की सेवा का कार्य करती हैं। आदर्श जितने अधिक संस्कृत होते जाते हैं उतनी ही मौलिक प्रवृत्तियों के शिक्षण की आवश्यकता अधिक होती है। न तो उन्हें हीन अवस्था में रखने दिया जाए और न ही उन्हें खुली छुट्टी दी जाए। इन दो में से मध्य का सुनहरी मार्ग सदा अच्छा रहता है। किन्तु इस सुनहरी मार्ग के लिए भी बड़े त्याग की आवश्यकता है और यह बलिदान प्रत्येक उस व्यक्ति को, जो शान्त जीवन व्यतीत करना चाहता है और दूसरों का जीवन भी शांत बनाना चाहता है, करना ही होगा। पिछले पृष्ठों में इसी विषय पर ही हम ने बल दिया है। केवल निजी आवश्यकताओं की अपूर्णता में ही अप्रसन्नता और अशान्ति नहीं प्रत्युत उस समाज या उस दुनियां से, जिसमें कि वह व्यक्ति रहता है अत्यधिक मांग करने में भी है।

अध्यापक का उपार्जित चरित्र

अब हम कुछ ऐसे उपार्जित गुणों पर विचार करेंगे जो एक सफल अध्यापक की आवश्यक सामग्री है। प्रथम है अपक्षपात, जिस की अवहेलना अध्यापक की सर्वप्रियता की घातक है। यह कहा जा सकता है कि ये असम्भव गुण हैं। मानव प्रकृति की प्रिय वस्तुएं अवश्य होती हैं। यह कथन सत्य है कि कट्टर अपक्षपात की तो जन समाज ने भी कभी हृदय से प्रशंसा नहीं की। मनुष्य को कुछ वस्तुएं या व्यक्ति अवश्य रुचिकर होते हैं और कुछ एक से उसे स्वाभाविक घृणा भी होती है। किन्तु बालकों के उचित विकास के लिए जितना भी माता पिता और अध्यापक अपनी प्रिय और अप्रिय वस्तुओं के प्रकाश पर नियन्त्रण करें उतना ही अच्छा है। छात्रों की ओर

ध्यान देने तथा सहानुभूति प्रकट करने में कभी कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए। एक बुद्धिमान अध्यापक ऐसा भेदभाव कभी नहीं करता। वह अपनी पक्षपात की भावना को कई अन्य विधियों से सन्तुष्ट कर सकता है। कक्षा के कमरे में पक्षपात पक्षपाती और जिस से पक्षपात किया जा रहा है दोनों के लिए हानिकारक है। दोनों अपने प्रति कक्षा की घृणा को बढ़ाते हैं किन्तु बेचारा छात्र तो विशेष रूप से सन्देह युक्त आंखों का केन्द्र बन जाता है। परीक्षाओं में दर्जा देने तथा अन्य कई प्रकार के कार्यों में महत्वपूर्ण स्थान देने में अध्यापक अपने प्रिय छात्रों को ऊपर उठाने का प्रयत्न करता है। निस्सन्देह यह भी एक प्रलोभन है जिस पर अध्यापक को संस्था के हित के लिए और अपनी कक्षा की एकलयता के लिये अवश्य विजय पानी है। अध्यापक को चाहिये कि वह प्रत्येक अवस्था में योग्यता को सदा पहला स्थान दे।

एक सफल अध्यापक का दूसरा लक्षण अत्यन्त कर्तव्यपरायणता है। वह अपने कर्तव्य को पहचानने का प्रयत्न करना है और उसे पूर्णतया करता है तथा उस पूर्णता का आनन्द प्राप्त करता है। वह सदा अपने पाठ तैय्यार करके लाता है और जिस समय वह कक्षा में प्रविष्ट होता है तो उसकी कक्षा का एक एक छात्र यह अनुभव करता है कि वह कुछ न कुछ अवश्य प्राप्त करेगा। वह गोलमाल नहीं करता, वह कभी वाक्छल नहीं करता और न ही वह कभी बहाने बनाता है। यदि किसी दिन वह अपना पाठ तैय्यार नहीं कर सका तो वह अपनी अभागी परिस्थितियों के लिए, जिन्होंने उसके दैनिक क्रम को भङ्ग किया है, शोक प्रकट करता है और कक्षा उसके भावों से सहमत होती है। ऐसी निष्कपटता की प्रशंसा प्रत्येक छात्र करता है और यह बात उन पर अक्षय प्रभाव छोड़ती है। वह

अध्यापक जो अपने कार्य से जी चुराता है और अपनी रोज़ी के लिए छल कपट से काम चलाये रखना चाहता है यदि वह भी अपनी सफलता के स्वप्न लेता है तो निस्सन्देह वह अपने आप को धोखा देता है। बालक प्रौढ़ व्यक्तियों की अपने सम्बन्ध में कल्पित बुद्धिमत्ता से अधिक बुद्धिमान होते हैं। शीघ्र ही अध्यापक यह अनुभव करने लग पड़ता है कि जो झूठ का महल उसने खड़ा किया है गिर पड़ेगा और उसके भविष्य पर प्रभाव डालेगा।

विनय और नम्रता लोगों को जो कुछ वे उसके विषय में सोचते हैं, उसके प्रकाश से रोक देती है किंतु उसे लोगों की कनखियों और मुस्कराहट में अपने सम्बन्धी समालोचना को भाँपने की योग्यता होनी चाहिए। समालोचना पर भी यदि वह अध्यापक आलस्य और वाकछल से अपनी स्थिति पर दृढ़ रहता है तो अधिकारियों को उस के सम्बन्ध में सोचना होगा। बुद्धिमान अधिकारी तुरन्त ही उसका उचित प्रबन्ध करेंगे।

धीरता एक और गुण है जो अध्यापक की सफलता के लिए आवश्यक है। जितने छोटे बच्चों से सम्पर्क हो उतनी ही इसकी आवश्यकता अधिक है। यह धैर्य धीरे धीरे काम करने वाले और मज़ाक-प्रिय छात्रों के लिए आवश्यक है।

ऐसे अवसर विरले ही होते हैं जब अध्यापक का क्रोध कक्षा की समस्याओं के हल करने में सहायक हो। उपद्रवी और पाठ में बार बार अशुद्धियाँ करने वाले छात्रों के सम्बन्ध में धीरता सदा सफल रहती है। मन्दबुद्धि छात्र उत्कट मार्ग प्रदर्शन पाने पर भी भूल पर भूल करता है किन्तु बुद्धिमान अध्यापक अपने में निराशा का चिह्न प्रकट नहीं होने देता और धीरता से यथावसर अपनी

सहायता का हाथ बढ़ाता रहता है। अन्त में अध्यापक के बाहरी आकार के सम्बन्ध में यहाँ कुछ शब्द लिखे जाते हैं। साफ़ और सुथरी मूर्ति से मन के महान गुण अत्यधिक सहायता प्राप्त करते हैं। नवीन शिक्षक कक्षा के कमरे की सजावट का उपदेश करते हैं। इस के साथ ही वे अध्यापक की स्वच्छता पर भी बल देते हैं ताकि जब छात्र अपनी आँख एक कोने से दूसरे कोने की ओर उठायें तो अध्यापक के मलिन आकार से उन पर बना बनाया प्रभाव कहीं नष्ट न हो जाये। धूल, अव्यवस्था, मलिनता और शोरोगुल आदि उकताने के कुछ कारण हैं। और शायद अध्यापक की अपनी पोशाक के सम्बन्ध में बेपरवाही भी एक अगोचर, अतिसूक्ष्म या गुप्त कारण है जिस से छात्र उस से अतिशीघ्र उकता जाते हैं।

तब आदर्श अध्यापक कौन है ? वह जिस का आकार स्वच्छ और उज्वल है, जिस का मन ताज़ा और उत्सुक है, जिसका दृष्टिकोण विस्तृत और हृदय सहानुभूति शील है, वह जो धीर और निष्कपट है और जो अपने व्यवसाय का आनन्द उठाने के योग्य है, वह जो आत्माभिमानी है, किन्तु अधिकार की अतृप्त भूख नहीं रखता, वह जो प्रिय और सेवावृत्ति वाला है तथा जिस में भृत्यभाव तथा चाप-लूसी की आदत नहीं। वह जिस को कामाग्नि शान्त है और वह जो स्वर्ण की अनुचित लालसा को जीत चुका है। निस्सन्देह ऐसा व्यक्ति उचित त्याग के साथ अपने जीवन का आनन्द उठाता है।

अब प्रश्न यह है कि क्या इन लक्षणों के साथ अध्यापक नये युग को पैदा कर सकेगा ? क्या उसका हृदय उन बाल गोपालों की ओर दौड़ेगा जिन्होंने इस देश का भावी नागरिक होना है ? नहीं, यदि वह देश प्रेम की उत्कट भावना से रहित है तो हमें

महान सन्देह है। देश प्रेम एक महान प्रबोधन है जो सामाजिक शुभ गुणों और सेवा की प्रवृत्ति को पैदा करता है। अकेला मज़हब सेवा की प्रवृत्ति पैदा नहीं कर सकता! मज़हब प्रायः स्वार्थ अथवा विश्व मित्रत्व की ओर प्रेरित करता है। स्वार्थ अपने निकटस्थ पड़ोसी को भुला देता है और विश्व मित्रत्व को उसको खो देता है। यह सम्भव है कि मज़हब, देश प्रेम के बिना जीवित रह सके। भारत जो अनेक शताब्दियों से देश प्रेम से रहित मज़हबों से परिपूर्ण है इस बात का भीषण उदाहरण है। यही कारण है कि यहाँ नागरिक चरित्र का मान-दण्ड बहुत नीचा है। अतः देश प्रेम की बलवती प्रवृत्ति के बिना अपने यहाँ के लोगों में सुधार और उन्नति की शुद्ध और पवित्र भावना का उत्पन्न होना असम्भव है।

दसवां अध्याय

आन्तरिक शान्ति

"आप के रहन सहन की आदतों में आप के सभी दुःखों की मौलिक चिकित्सा निहित है।" "एक स्थायी चिकित्सा निम्न विधियों से प्राप्त हो सकती है। पहली, भ्रमों का निवारण और उनके स्थान पर सत्य ज्ञान की प्राप्ति। दूसरी, जो अत्याधिक महत्वशाली है, दैनिक सत्यव्यवहार।" हमारे पाठकों को पिछले अध्यायों के अध्ययन से मानवी मन के व्यवहार का पर्याप्त ज्ञान हुआ होगा। प्रत्येक मनुष्य स्वाभाविक इच्छाओं से अपना जीवन आरम्भ करता है किन्तु अपने जीवन काल में उस का संचालन केवल इन इच्छाओं से ही नहीं होता। प्रत्युत इसके लिए बुद्धि तथा धर्म की भी आवश्यकता है। वास्तव में प्रवृत्तियों का एक निश्चित मार्ग में संगठन और उनका नियन्त्रण इन्हीं दो स्तम्भों पर निर्भर है। धर्म उत्कंठाओं का मूल्य निर्धारण करता है और अपने नियमानु-सार जो अच्छा और हितकर होता है उस को स्वीकृति देता है। बुद्धि उन उत्कंठाओं की पूर्ति की सम्भावना और असंभावना का ध्यान रखती है और उनकी संतुष्टि की प्राप्ति के साधन जुटाती है। बुद्धि धर्म पर भी अपना निर्णय चलाती है किन्तु एक साधारण व्यक्ति में बुद्धि यह कार्य नहीं करती वहां यह परम्परागत प्रथाओं में बन्ध जाती है।

प्रवृत्ति-जन्य सभी इच्छायें सन्तुष्ट नहीं की जा सकतीं। उन में से कुछ बाह्य वास्तविकताओं के और कुछ धर्म के विरुद्ध होती हैं। ऐसी भी कई उत्कंठायें एक मनुष्य में हो सकती हैं जो उसकी परि-

स्थितियों के कारण कभी पूर्ण नहीं हो सकतीं। ऐसी अवस्था में मनुष्य इन उत्कंठाओं का वीरता से मुकाबला करे, बुद्धिमत्ता से अपने आप को समझा कर उन्हें हमेशा के लिये त्याग दे। वे आसानी से नहीं जायेंगी। वे बहुत अड़ियल होती हैं। वे अधिक से अधिक चिल्लायेंगी, मांग करेंगी। अतः कई बार तर्क वितर्क करना होगा और तब तक करना होगा जब तक कि वे लुप्त न हो जायें। उन असंतुष्ट इच्छाओं के सन्तोष और मानसिक शान्ति की प्राप्ति का यही एक साधन है। स्टेकल अपनी पुस्तक Beloved Ego में लिखता है कि "कार्य, कर्तव्य, आत्म-त्याग और उन से प्राप्त प्रसन्नता के उन क्षणों का नाम जीवन है जो बहुत कम प्राप्त होते हैं।" वे लोग जो अपने मन पर मिथ्या कल्पना को अधिकार करने देते हैं बड़े अभागे हैं। मनुष्यके लिए वास्तविक प्रसन्नता वास्तविकताओं का सामना करने में, कर्तव्य परायणता में, और अपनी तथा अपने संसर्ग में आये व्यक्तियों की शारीरिक, मानसिक, और चारित्रिक स्थिति के सुधार के प्रयत्नों में निहित है। वह बुद्धिमत्ता से उन परिस्थितियों को जांचे जिन में कि वह रहता है। और अपनी इच्छाओं की पूर्ति की सम्भावना का अनुमान करे। इस प्रकार वह अपने आप में सन्तुष्ट हो सकता है। इस मानसिक शान्ति के प्राप्त किए बिना उसकी बहुत कार्य हानि होगी। जीवन सुगम वस्तु नहीं। इस को बुद्धिमत्ता से समझ कर वह उसे निर्विघ्न और शान्त बना लेगा। व्यर्थ इच्छायें उस अमूल्य शक्ति को अधिकतया नष्ट कर देती हैं जो कि अन्य कई हितकर कार्यों के साधने में लग सकती है। एक दिन एक सज्जन कह रहे थे, "क्या ही अच्छा होता कि मुझे डरबी लाटरी आ जाती", उसके मित्र ने मुड़ कर कहा, "क्या तुमने टिकट ख़रीदी थी?" उस सज्जन

ने उत्तर दिया, "नहीं"। इस उदाहरण से पता चल सकता है कि लोग किस प्रकार उन पदार्थों की चाह में, जिन के लिए वे प्रयत्न तक नहीं करते, अपने आप को नष्ट करते हैं। जीवन की समस्याओं को बुद्धिमत्ता से समझने के साथ यथोचित प्रयत्न करना भी आवश्यक है। एक सुव्यवस्थित जीवन का आधार इन्हीं दो स्तंभों पर निर्भर है। प्रत्येक अध्यापक को सुव्यवस्थित जीवन की आवश्यकता है। उसे चुप चाप बैठ कर और सच्चे हृदय से अपना विश्लेषण करना चाहिए। उसे अपनी इच्छाओं की सूची बनानी चाहिए। अपने लिए निश्चित परिस्थितियों की रोशनी में अनुसन्धान करना चाहिए और उसे अपनी शक्ति अथवा योग्यता का विचार करते हुए उन इच्छाओं के औचित्य का, उन के सन्तोष की सम्भावना के साथ अनुमान करना चाहिए। इच्छाओं के औचित्य के सम्बन्ध में अनुमान या निर्णय ऐसे अहंकार से प्रभावित हो सकता है जो प्रायः स्वार्थ के लिए बहुत कुछ करने के कारण अन्धा होता है और जो दूसरों के हितों पर विचार करने के लिए उद्यत नहीं होता। इन इच्छाओं के सन्तोष की सम्भावना एक बुद्धि-पूर्ण अभ्यास से प्रकट हो जायेगी। इस प्रकार का आत्म-विश्लेषण व्यर्थ की मिथ्या कल्पनाओं में नष्ट होने वाली अत्यधिक शक्ति की रक्षा करेगा, जो अपने व्यावसायिक कार्यों में जिस में प्रत्येक अध्यापक स्वाभाविक रूप से अपने आप को व्यस्त रखेगा, प्रयुक्त होगी। आन्तरिक प्रसन्नता का मर्म इस कहावत में निहित है कि "अपने आप को जानो, अपने आप को स्वीकार करो और अपने हो जाओ।"

कई बार मन अज्ञात चिन्ताओं के कारण पीड़ित होता है।

उनका स्रोत अचेत मन में होता है। पिछले अध्याय में हम लिख आये हैं कि अप्रिय अनुभव जिन का एक व्यक्ति सामना नहीं करना चाहता या जिन्हें सहन नहीं कर सकता अज्ञात रूप से उस के अचेत मन में चले जाते हैं। वहां वे अन्य अपने साथी इकत्रित करते हैं और एक शक्तिशाली संघ बना लेते हैं जिसे मनोविज्ञान की परिभाषा में कॉम्लैक्स कहते हैं। यह कॉम्लेक्स उस व्यक्ति के व्यवहार में कई प्रकार की ऐसी गांठें पैदा करके जिन्हें उसका चेत मन नहीं समझ सकता, उसके जीवन में विघ्न पैदा करता है। उन विघ्नों में से एक विस्मृति है।

हम यहां एक प्रकार के दूषित विस्मरण का वर्णन कर रहे हैं। चेत रूप में आप एक बात को भूलना पसन्द नहीं करते किन्तु फिर भी आप भूल जाते हैं। आप एक नाम स्मरण करना चाहते हैं किन्तु वह स्मरण नहीं होता। जिह्वा पर आ आकर भी वह नाम नहीं आता। आप अपने काम पर देर से आने लगते हैं। आप दिल से समय पर जाना चाहते हैं। किन्तु अन्तिम क्षण आप भूल जाते हैं। आप प्रयत्न करने पर भी भूल जाते हैं। आप अपने डैस्क की चाबियां लाना भूल जाते हैं। आप जानते हैं कि आप उन्हें ठीक स्थान पर रखने का प्रत्येक ध्यान रखते हैं किन्तु घर से चलने पर आप उन्हें लाना भूल जाते हैं। फ्राइड महाशय के हम आभारी हैं जिन्हों ने इस प्रकार की घटनाओं पर प्रकाश डाला है। वह लिखते हैं कि इस प्रकार की विस्मृति उस अप्रिय अनुभव से सम्बन्धित है जो अचेत मन में गुप्त रूप से निहित है। आप कुछ निश्चित कार्य करना भूल जाते हैं क्योंकि आप अचेत मन में ऐसा ही चाहते हैं।

इस दूषित विस्मृति के पीछे सदा कोई अप्रिय अनुभव होता है या उस अप्रिय अनुभव से सम्बन्धित कोई अन्य विचार होता

है। बिल अदा करना कुछ लोगों के लिए अत्यन्त अप्रिय होत है। इस लिए वे भूल जाते हैं। वे लोग जो अपनी नियुक्तियों को भूल जाते हैं, वे अचेत रूप से वैसी नियुक्तियां नहीं चाहते। यद्यपि चेत रूप में वे इस सच्चाई को स्वीकार करने के लिए उद्यत नहीं। कई बार हम एक कार्य का करना स्थगित कर छोड़ते हैं। वास्तव में हम उस कार्य को करना नहीं चाहते, किन्तु ऐसा होने पर भी हम उस कार्य को करने का प्रत्येक सचेत प्रयत्न करते हैं।

दूषित विस्मृति का विश्लेषण हो सकता है और उसका नियन्त्रण भी हो सकता है। इसका कारण वे कुछ अप्रिय विषय हैं जो अचेत मन में निहित हैं। बहुधा थोड़े से प्रयत्न से उन का पता लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए एक अध्यापक अपने डैस्क की चाबी लाना भूल जाता है। ऐसा भी हो सकता है कि उस से अचानक ऐसा हो गया हो किन्तु यदि वह बार बार अपनी चाबी भूल जाता है तो इस अवस्था के विश्लेषण की आवश्यकता है। मुख्यतया अध्यापक को काम करना पसन्द ही नहीं होगा, या वह मुख्याध्यापक से लड़ पड़ा होगा, या उस के मन में स्कूल के प्रति या उस कक्षा के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई होगी। जो भी कारण है वह धैर्य पूर्ण थोड़ी सी खोज से पता लग सकता है। जब कारण पता लग जाय तो मन को उसके अनुसार पुनः शिक्षित किया जा सकता है। उस कारण पर अपने मन में विवेचना की जा सकती है। इस का औचित्य अथवा अनौचित्य जांचा जा सकता है। मन को समझाया जा सकता है कि यदि यह कठिन समस्या है तो इस का उत्साह से मुकाबला करना चाहिए और इस की अवहेलना नहीं करनी चाहिए या उससे भागना नहीं चाहिए। यह छल या बहाना साज़ी, जो

विस्मृति के रूप में की जा रही है, सर्वथा व्यर्थ है। इस विधि से मन को बुरी स्थिति के त्याग के लिए उद्यत किया जा सकता है और भविष्य में चाबी नहीं भूल सकती।

दूसरा विघ्न है क्रोध। क्रोध एक संवेग है जो उस समय पैदा होता है जब कि आप किसी कार्य में लगना चाहते हैं किन्तु उस में सहसा रुकावट पड़ जाती है। यद्यपि ऐसा क्रोध स्वाभाविक है किन्तु इस की तीव्रता प्रतिबन्ध के रूप,आपकी मानसिक स्थिति, और आत्म नियन्त्रण की शक्ति पर निर्भर है। किन्तु ऐसा क्रोध भी तो है जो उस प्रतिबन्ध से सर्वथा असंगत है जो उस के बढ़ाने का कारण समझा जा रहा है। कभी आप निरर्थक अथवा तुच्छ बातों पर क्रुद्ध होते हैं या कभी आप सम्पूर्ण दिन ऐसे कर्कश या चिड़चिड़े से रहते हैं कि ऐसी साधारण सी बातों पर क्रोध करने लग पड़ते हैं जिन पर इस से पहले किसी दिन क्रोध नहीं किया था। इस प्रकार का क्रोध प्रायः स्थानान्तिरित संवेग होता है। एक स्पष्ट उदाहरण लीजिए। आप अपने परिवार के एक सदस्य से झगड़ते हैं। आप कुपित हो जाते हैं किन्तु आप अपने संवेग का प्रकाश नहीं करते। आप उसे पी जाते हैं। उसका निरोध हो जाता है और वह भूल जाता है। तुरन्त ही आप स्कूल आ जाते हैं और अपनी कक्षा ले लेते हैं। उस दिन छात्र आप के व्यवहार में विशेष अन्तर का अनुभव करते हैं। एक कोने में की जा रही साधारण बातचीत, दूसरे कोने की एक धीमी सी हंसी, एक बुरा लेख, एक देर से आने वाला छात्र, ये सब अथवा इसी प्रकार की अन्य कई बातें जिन की साधारणतया आप कोई परवाह नहीं करते थे या जिन्हें आप मामूली समझते थे, वे आज आप को आग बबूला कर देती हैं और आप यह नहीं जानते

कि ऐसा क्यों है ? यदि आप अचेत मन के छलों से परिचित नहीं तो आप नहीं जान सकते कि वह क्रोध जो घर पर दब गया था वह किसी अन्य साधारण सी बात पर प्रकट होने का प्रयत्न कर रहा है। कभी कभी किसी स्थानान्तरित संवेग का कोई अन्य दूर का कारण भी हो सकता है। उस अवस्था में उस संवेग का केवल सम्पूर्ण विश्लेषण ही शान्तिदायक हो सकता है।

अचेत मन एक बड़ा ठग है क्योंकि यह अपने सन्तोष के लिए कई ऐसी छल बल की विधियें निकालता है कि जिसे चेत मन समझ नहीं सकता। वे अनुभव जिन का निरोध किया जाता है पर्दे में गुप्त रूप में प्रकट होते हैं और अपने सन्तोष के लिए दुःख और समस्यायें पैदा करते हैं। और प्राय; सूक्ष्मग्राही व्यक्तियों में इन अनुभवों में से किसी एक से सम्बन्धित संवेग शरीर के उस अंग पर जो सब से दुर्बल है, प्रभाव डालता है। इसी लिए पेट, दिल, सिर और अन्य शारीरिक अंगों से सम्बन्धित कई एक रोगों का कारण यही निरुद्ध अनुभव होते हैं।

हम यहां अपने एक मित्र की रोचक घटना का उल्लेख अवश्य करना चाहते हैं। मेरे मित्र "क" का अपने मालिक मकान से झगड़ा हो गया। उसे अपना वह मकान जिस में वह एक वर्ष से अधिक काल से रहता था, ख़ाली करना था। श्री "क" की यह अभिलाषा थी कि कोई भी व्यक्ति विशेषतया उस का कोई मित्र इस मकान को किराये पर न ले और मकान कुछ महीनों के लिए ख़ाली पड़ा रहे। एक दिन उस के अपने मित्र "ह" ने जो उसका सहकारी भी था, उस मकान को किराया पर लेने और मालिक मकान से बात चीत करने की इच्छा प्रकट की। उसने विनय रूप से "क" महाशय से इस के लिए स्वीकृति मांगी। इस बात का "क" महाशय पर गहरा प्रभाव

पड़ा। उसने अपनी इस अवस्था का निरूपण हम से इन शब्दों में किया।

"जब मेरे मित्र "ह" ने मुझे यह कहा कि मैं यह मकान लेना चाहता हूं तो मुझे अचानक ही बड़ी चोट लगी किन्तु मैंने उसे स्वीकृति दे दी और चुप रहा। मैं बड़ा परेशान था और उस दिन अपनी श्रेणियों को पढ़ा न सका। जब मैं घर लौटा तो मुझे सख्त सर दर्द अनुभव होने लगा। मैं अपने नौकर से लड़ पड़ा और सम्पूर्ण रात्री बेचैन रहा। दूसरे दिन प्रातः पूर्ववत् सिर दर्द रहा। मैं अत्यन्त मुरझाई अवस्था में कालेज गया। बरामदे में "ह" महाशय मुझे फिर मिला और उस ने कहा कि मैं ने उस मकान को लेने का विचार छोड़ दिया है। मैं यह सुनते ही सहसा पुलकित हो उठा। यद्यपि मैं अपनी इस प्रसन्नता का प्रकाश न कर सका किन्तु मेरा सारा बोझ हलका हो गया और थोड़ी देर में सिर दर्द भी हट गया।"

यह एक साधारण घटना है किन्तु प्रायः पेचीदा शारीरिक रोग भी मानसिक कारणों से होते हैं। कारण का अनुसन्धान करना चाहिए और उसे दूर करना चाहिए। यदि उस का दूर करना सम्भव न हो तो साहस से उस का सामना करना चाहिए। यथोचित रूप से उस का परीक्षण करना चाहिए और अपने आप को यथोचित रूप से उसके अनुकूल करना चाहिए। अचेत मन कई प्रकार के छल करता है। फ्राइड, अडलर, युंग और उन के सहकारियों ने इन पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। प्रत्येक वह व्यक्ति जो मानसिक शक्ति का अभिलाषी है, उन के प्रस्तावों का अवश्य अनुकरण करे। हमने यहां उन के अन्वेषणों का केवल संकेत मात्र ही किया है। हम हृदय

से यह अनुभव करते हैं कि प्रत्येक व्यवसाय, विशेषतया अध्यापक के लिए आन्तरिक शान्ति अत्यन्त आवश्यक है। यह आन्तरिक शान्ति कहने मात्र से प्राप्त नहीं हो सकती। इसे तो प्रयत्न से प्राप्त करना होगा। इस के लिए पूर्ण आत्म-ज्ञान तथा अचेत मन की कठोरताओं से बचने के लिए जागरूक सावधानता की आवश्यकता है। प्रयत्न और अभ्यास से तथा आत्म विश्लेषण द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपना पुनर्शिक्षण कर सकता है।

ग्यारहवां अध्याय

मानसिक विश्लेषण

हमने मानसिक विश्लेषण को सदा मानव जाति के लिए एक महान प्रसाद या उपहार समझा है। यदि मानसिक और अध्यात्मिक उन्नति से पूर्व पूर्ण मानसिक ज्ञान की प्राप्ति आवश्यक है तो हमारे पास इस के लिए मानसिक विश्लेषण के अतिरिक्त अन्य कोई विधि नहीं। चाहे सचेत मन कितना सच्चा और चतुर क्यों न हो, अचेत मन के छल उसके लिए ऐसी मिथ्या स्थिति उत्पन्न कर देते हैं जिन से न केवल एक साधारण व्यक्ति धोखे में आ जाता है प्रत्युत बड़े बड़े सन्त भी नहीं बच सकते। जब तक अचेत प्रवृत्तियों (उनके निमित्तों, कारणों) की खोज न की जाये और जो पर्दा उन्होंने ओढ़ रखा है उसे न हटा दिया जाये और जब तक उनका आरोग्य-कर प्रबन्ध न कर दिया जाये तब तक उन्नति सम्भव नहीं। हम यहां सन्त महात्माओं और नवजीवन के लिए उन के परिश्रमों का वर्णन नहीं कर रहे। हमारे मन में वह साधारण अध्यापक है जो कभी कभी ऐसी मानसिक ग्रन्थियों से दुखी होता है जो उसकी मानसिक शान्ति को नष्ट भ्रष्ट कर देती हैं। ऐसे अध्यापक के लिए मानसिक विश्लेषण विधि से परिचित रहना आवश्यक है।

अचेत मन को क्रिया अवस्था में पकड़ने या देखने के लिए जो प्रयत्न किया जाये उसे मानसिक विश्लेषण कहते हैं। आप चेत और अचेत मन को एक समय में नहीं देख सकते। जब आप गंभीरता से गणित का कोई प्रश्न निकाल रहे हैं तो उस समय चेत मन कार्य कर रहा होता है। जब आप दिन को, इस ज्ञान के बिना

कि आपके आस पास क्या हो रहा है, स्वप्न ले रहे होते हैं तो उस समय आपका अचेत मन कार्य कर रहा होता है। अचेत मन की क्रिया केवल उस समय आरम्भ होती है जब सचेत मन की क्रिया कुछ काल के लिए बन्द हो जाती है जैसे रात्रि के समय स्वप्न में। जागरण में भी स्वप्न सी अवस्था पैदा की जा सकती है।

आप एक आराम कुर्सी पर बैठ जायें और अपने आप को शिथिल छोड़ दें। अपने आप को शिथिल छोड़ने की विधि सीखनी होता है। यह अपने आप नहीं आती। सर्व प्रथम अपने पांव की अंगुलियों का ध्यान करें और यह अनुभव करें कि वे शिथिल हो रही हैं। पुनः धीरे धीरे ऊपर की ओर आयें। अब टखनों को शिथिल छोड़ दें। तब जंघा को ढीला छोड़ दें, पुनः पेट को, यहां तक कि ऊपर तक पहुंच जायें। जब आप सिर को छोड़ देंगे, भारीपन वापिस आ सकता है। इस विधि को दो तीन बार करें तो आप सफल हो जायेंगे। उस शिथिल अवस्था में अचेत मन प्रकट हो जायेगा। एक पैन्सल और पत्र (जो पहले से ही आप के पास पड़े होने चाहिएं) ले लें और जो कुछ आप के मन में आता जाये लिखते जायें। जब तक आप सुख पूर्ण लिख सकें लिखते जायें। जब आप लिखना बन्द कर दें और खड़े हो जायें तो आप अपने आप को अधिक शान्त अनुभव करेंगे। यह "स्वच्छन्द विचारों का प्रकाश" एक प्रकार का मानस रेचन है। कुछ घण्टों के पश्चात् या दूसरे दिन उस पत्र को पढ़ें। इस प्रकार आप अपनी अचेत इच्छाओं को जान लेंगे।

बहुधा "यह विचारों का स्वच्छन्द प्रकाश" एक उत्तेजना से आरम्भ होता है। आप अपना छाता भूलना आरम्भ करते हैं। आप इस भूल को समझने के इच्छुक हैं। मन की शिथिल अवस्था में आप "छाता" शब्द से आरम्भ करेंगे। अथवा आपने एक अद्भुत स्वप्न देखा

हैं। आप उसके अर्थ जानना चाहते हैं। आप उस स्वप्न का कोई विशिष्ट भाग लें और उसी ढंग से स्वच्छन्द विचार धारा आरम्भ कर दें, जिस का ऊपर वर्णन किया गया है। जब आप उस निरुद्ध इच्छा की खोज कर लेंगे जो आपको भूल की उत्तरदायी है तो आप उसका मुकाबला कर सकेंगे। उसके औचित्य तथा उसके सन्तोष की सम्भावना को विवेचना कर सकेंगे। प्रत्येक निरुद्ध इच्छा या तो धर्म के विरुद्ध होती है या बाह्य वास्तविकता के। यह युद्ध चार प्रकार से समाप्त हो सकता है। या तो बाह्य वास्तविकता बदली जाय, या धर्म का आदर्श बदला जाये या इच्छा को त्याग दिया जाये या धर्म के नियम भंग किये बिना उसकी उसके स्थापनापन्न पदार्थ से पूर्ति की जाये। जब इन चार विधियों में से किसी एक का भी अनुसरण नहीं किया जाता तो एक उन्माद की अवस्था प्रकट हो जाती है। यह उन्माद समस्या का अहितकर हल है। इस से बचने के लिए उपरिलिखित विधियों में से किसी एक का अनुसरण अवश्य करना चाहिए। बहुत अवस्थाओं में त्याग ही उचित होगा। एक भारतीय को त्याग स्वभाव से प्राप्त है क्योंकि यह त्याग जीवन के आदर्श रूप में उस के रक्त में संचित है।

अध्यापक भाइयो! आप को संसार के पुनर्जन्म का कार्य सौंपा गया है। आप मनुष्यता के भविष्य के निर्माता हैं। वर्तमान सभ्यता उन भौतिक सुखों के होते हुए भी जिन को उस ने स्वयं जन्म दिया है, नर्क वासियों के धर्म का अनुसरण कर रही है। भावी सन्तती के हृदय परिवर्तन के लिए आप को पुकारा जा रहा है। सम्भव है कि हिमालय जैसी ऊंची सीमाएं आप के मार्ग में प्रतिबन्ध बनें किन्तु भगवान ने आप को हिमालय जैसे प्रयत्न भी प्रदान किये हैं। ज़ख्मी जनता आप को पुकार रही है। क्या आप उस की सहायता को आयेंगे?

परिशिष्ट

आधुनिक मनोविज्ञान के निर्माता

सिगमन्ड फ्रॉइड

सिगमन्ड फ्राइड बीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध विचारकों में से एक था। उस ने हमें मन के एक ऐसे रूप का बोध कराया है जो हमारे बहुधा व्यवहारों का निर्धारक है और जिस से हम अब तक परिचित नहीं थे। यह मन "अचेत मन" के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। फ्राइड ने अपनी सम्पूर्ण आयु को अत्यन्त परिश्रम के साथ अचेत मन के रूप के अनुसन्धान में लगा दिया।

फ्राइड जैकोस्लोवाकिया के छोटे से नगर मोराविया के फ्रोबर्ग में ६ मई १८५६ को उत्पन्न हुआ। उस के माता पिता यहूदी थे। और वह स्वयं भी अपनी सम्पूर्ण आयु में यहूदी ही रहा। वीआना में चार वर्ष की आयु में उस की शिक्षा आरम्भ हुई। वह अपनी कक्षा में सर्व प्रथम रहता था। १८७३ में वह यूनिवर्सिटी में प्रविष्ट हुआ और १८८२ में उसने Doctor of Medicine की डिग्री प्राप्त की। उसने एक डाक्टर के रूप में जीवनकार्य आरम्भ किया। उसे मानसिक रोगों के परीक्षण में अधिक रुचि हो गई। उस ने कुछ काल सालपिट्रियर में चारकोट के साथ लगाया और मोहावस्था में दिये जाने वाले उन संकेतों की विधि को सीखा जिसे चारकोट हिस्टीरया, वातोन्माद, की चिकित्सा में प्रयुक्त किया करता था। १८८६ में उसने मानसिक रोगों के विशिष्ट चिकित्सक के रूप में वीआना में निवास आरम्भ किया। १८६१ से १८६५ से कुछ समय आगे तक उसने

ब्रियुर को सहकार्यता में कार्य आरम्भ किया। दोनों ने वातोन्माद मूर्छा की रूप रचना पर सम्मिलित पत्र प्रकाशित किये। इसके पश्चात वह ब्रियुर से अलग हो गया और उसने अपना कार्य आरम्भ कर दिया और अनुसन्धान भी जारी रखा। उसने हमें अचेत मन के क्रिया कलाप पर विस्तृत साहित्य प्रदान किया है। आज हम फ्राइड के जन्म के पूर्व काल से अपने सम्बन्ध में अधिक ज्ञाता हैं।

जब नाज़ियों ने आस्टरिया पर आक्रमण किया फ्राइड को यहूदी होने के कारण अपने देश से निकाल दिया गया। वह इंगलैंड चला आया और उसने अपने जीवन के अन्तिम कुछ वर्ष यहां व्यतीत किये। वह ८३ वर्ष की आयु में २३ सितम्बर १९३९ को संसार को अपने विचारों से भरपूर करके हम्पस्टैड—अपने घर—में इस संसार से चल बसा।

फ्राइड के सिद्धान्तों में से बहुत से ऐसे सिद्धान्त हैं जिन से सम्पूर्ण संसार सहमत है। और ऐसे भी सिद्धान्त बहुत हैं जिन्हें केवल उनके अनुयायी ही स्वीकार करते हैं। उन के पहली प्रकार के सिद्धान्त निम्नलिखित हैं :—१ अचेत मन का अस्तित्व, जो हमारे लिए सुगमता से प्राप्य नहीं है। इस मन का तर्क चेत मन से भिन्न है। हमारी सहज प्रकृतियां अचेत मन का भाग हैं। हमारे साधारण और असाधारण व्यवहार का स्रोत अचेत मन की प्रवृत्ति शक्ति है। वे अनुभव जो सचेत मन के लिए अप्रिय तथा अस्वीकृत होते हैं अचेत मन में चले जाते हैं और चेत मन से अलग हो जाते हैं। यह स्थिति निरोध के नाम से प्रसिद्ध है और निरुद्ध अनुभवों को कॉम्प्लैक्स कहते हैं। यही कॉम्प्लैक्स रोगी और कपटी व्यवहार के उत्पादक होते हैं।

अचेत मन "मानसविश्लेषण विधि" से प्राप्य होता है। आरम्भ में फ्राइड ने "मोहावस्था में संकेत" विधि का प्रयोग किया किन्तु ब्रियुर से अलग होने के पश्चात् उसने अपनी मानस-विश्लेषण की प्रसिद्ध विधि को जन्म दिया। इस विधि में "विचारों का स्वच्छन्द प्रकाश" तथा "स्वप्न विश्लेषण" की क्रियाएं की जाती हैं।

दूसरे प्रकार के सिद्धान्तों में "फ्राइड का मनोविज्ञान" है जिसे मानस विश्लेषण भी कहते हैं। वास्तव में "मानस विश्लेषण" नाम में फ्राइड की विधि तथा मनोविज्ञान दोनों आ जाते हैं। फ्राइड के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त अत्यन्त संक्षिप्त रूप में इस प्रकार से हैं :—

पहला यह कि सभी मानसिक कष्टों की खोज आरम्भिक बाल्यकाल के अनुभवों में की जा सकती है। प्रत्येक बालक का अपना काम-जीवन होता है। बालक की काम सम्बन्धी इच्छाओं की अपूर्ति भावी वर्षों में मानसिक कष्टों का कारण होती है। परिवार में पिता ऐसी इच्छाओं के विरोध का मुख्य स्रोत है। यह विरोध सार्वलौकिक है। यदि बालक इन इच्छाओं के विरोध का उचित प्रबन्ध कर लेता है तो वह एक सामान्य स्थिति वाला मनुष्य बनता है। दूसरा, काम प्रवृत्ति ही मनुष्य के व्यवहार का मुख्य स्रोत है। हमारी पुरानी कथायें, कलायें तथा सभ्यता इस काम प्रवृत्ति का संस्कृत और विकृत रूप हैं। उन लोगों में से जो फ्राइड के इन सिद्धान्तों के अनुयाई नहीं, बहुत से यह मानने के लिए उद्यत हैं कि फ्राइड का यह मनोविज्ञान कुछ विशेष मानसिक कष्टों की व्याख्या अवश्य करता है। किन्तु उनका विचार है कि यह सिद्धान्त सर्वदा सत्य नहीं।

फ्राइड की मुख्य पुस्तकें

1. The Ego and I, d.
2. Interpretation of Dreams.
3. New Introductory Lectures on Psycho-analysis
4. Psychopathology of Every-day life.
5 An Autobiographical Study.
6. A General Introduction to Psycho-analysis.

कार्ल युंग

बीसवीं शताब्दी के मनोवैज्ञानिकों में कार्ल युंग का दूसरा स्थान है। वह बेसल में २६ जुलाई १८७५ को पैदा हुआ। वह १६११ तक फ्राइड का शिष्य रहा किन्तु इसके पश्चात् वह एक मुख्य विषय पर अपने अध्यापक से मतभेद होने पर उससे पृथक हो गया। और उसने ज्युरिच में एक नये मत की स्थापना की।

युंग ने फ्राइड द्वारा प्रतिपादित अचेत मन की धारणा और मानसिक शक्ति को विस्तृत किया। जिस अचेत मन का अन्वेषण फ्राइड ने किया युंग उसे वैयक्तिक अचेत मन कहता है। युंग की सम्मति में इसके नीचे एक सामूहिक अचेतमन है जिस में मनुष्य जाति सम्बन्धी अनुभव रहते हैं। फ्राइड की सम्मति में मानसिक शक्ति लिबिडो (Libido) का अन्तिम विश्लेषण काम शक्ति है। युंग की सम्मति में जीवन शक्ति केवल काम मार्ग में ही प्रवृत्त नहीं होती प्रत्युत मनुष्य की क्रिया शक्ति के अन्य सभी मार्गों में भी प्रवृत्त होती है। बर्गसन ने जीवन शक्ति को ऐसा ही समझा है।

हम किसी वस्तु में उस समय रुचि का प्रकाश करते हैं जब हम अपनी मानसिक शक्ति उस पर लगा देते हैं। जब हम अपनी मानसिक शक्ति को उससे हटा लेते हैं तब हम उसमें रुचि नहीं रखते।

युंग के मतानुसार मनुष्य में मानसिक कष्ट तब उत्पन्न होता है जब एक विघ्न, प्रतिबन्ध उसके सम्मुख आता है और वह उसका सामना नहीं कर सकता। उस अवसर पर मनुष्य उस समस्या से हट जाता है और अपने आरम्भिक बाल्यकाल के अनुभवों की ओर, जबकि माता की प्रिय देख-रेख में प्रत्येक कार्य सुगम और शान्तिप्रद था, लौट जाता है। युंग की सम्मति में दुःख का कारण वर्तमान क्षण में निहित है। यह मनुष्य के शान्त जीवन में एक प्रतिबन्ध है जिस से लड़ने में वह असफल हो गया है। वह अपने अचेत मन में अपनी माता की सहायता का इच्छुक है और जिसके परिणाम स्वरूप वह उस रुकावट से मुकाबले का साहस खो बैठता है। युंग के मनोविज्ञान के अनुसार माता के साथ बालक का अत्यधिक अनुराग बालक के मानसिक रोगों की उत्पत्ति का मुख्य कारण है। यद्यपि युंग इस बात से इन्कार नहीं करता कि कई ऐसे रोग भी हैं जिनकी व्याख्या और चिकित्सा फ्राइड के मनोविज्ञान द्वारा हो सकती है किन्तु युंग का विश्वास है कि मानसिक स्वास्थ्य माता के आश्रय के त्याग और स्वतन्त्र होकर स्वतन्त्र विचारक और स्वतन्त्र निर्माता होने में है।

युंग के अचेतमन के अनुसन्धान की विधि यह है कि रात्री के स्वप्नों, दिन के स्वप्नों और चित्रों का विश्लेषण किया जाये। फ्राइड के विचारों के स्वच्छन्द प्रकाश की विधि में युंग ने "शब्द मेल विधि" की वृद्धि की है। उस ने १०० शब्दों की सूची बना रखी

है। रोगी सर्वथा शिथिल अवस्था में बैठ जाता है। उसे यह आदेश दिया जाता है कि 'जब तुम एक शब्द सुनो तो उन विचारों का निस्संकोच प्रकाश करो जो उसके सुनते ही तुम्हारे हृदय में उत्पन्न हों। एक एक करके शब्द कहे जाते हैं और रोगी के उत्तरों का संग्रह किया जाता है। शब्द और उसके द्वारा उत्पन्न होने वाले उत्तरों में समय अवरोध घड़ी (स्टॉपवॉच) द्वारा गिना जाता है। प्रायः २५ सैकिंड लगते हैं। यदि किसी शब्द पर उत्तर देर से या अधिक शीघ्रता से या असाधारण मिलता है तो वह शब्द अचेतमन में निहित दुःख का स्रोत सूचक समझा जाता है।

युंग मनुष्यों की दो श्रेणियां—अन्तर्गामी तथा बाह्यगामी—करने में प्रसिद्ध है। अन्तर्गामी उस व्यक्ति को कहते हैं जो अपने अन्दर देखता है। बाह्य गामी व्यक्ति बाह्य जीवन के अध्ययन में अपना जीवन लगा देता है। यह दो शब्द हमारे लोक-प्रिय साहित्य का अंग हो चुके हैं। मनुष्य के दैवी रूप के सम्बन्ध में युंग का अनुसन्धान कार्य अद्वितीय है। हमारे अपने आप को जानने के परिश्रम के इतिहास में इस कार्य के लिए वह अन्य सब अनुसन्धानों की अपेक्षा प्रसिद्ध रहेगा। युंग की प्रसिद्ध पुस्तकें ये हैं :—

1. Psychological Types.
2. Psychology of the unconscious.
3. Psychology and Religion.
4. Modern man in search of soul.
5. Integration of the Personality.

एलफ्रैड एडलर

फ्राइड, युंग और एडलर यह वे तीन महापुरुष थे जिन्होंने दो महान युद्धों के आन्तरिक काल में शिक्षित जगत का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। इनमें से प्रत्येक ने अपनी अपनी विधि से मनुष्य जाति की सेवा की है। फ्राइड और युंग ने हमें जो कुछ हमारे विषय में बताया है वह आप पिछले पृष्ठों में पढ़ चुके हैं। अब हम यह पढ़ेंगे कि किस प्रकार एडलर ने हमारी जीवन सम्बन्धी मुख्य समस्याओं को हल किया।

एलफ्रैड एडलर ल्योपोल्ड एडलर नामक व्यापारी का पुत्र था। उसका जन्म ७ फ़र्वरी १८७० ई० को वीआना के शाखा नगर में हुआ। वह अपने पिता का दूसरा पुत्र था। उसका बाल्यकाल सुखमय न था। जब वह केवल तीन वर्ष का ही था तो उसके मन पर उसके छोटे भाई की मृत्यु का और चार वर्ष की आयु में अपनी सख़्त बीमारी का बड़ा प्रभाव पड़ा। वह दो बार बाज़ारों में गाड़ी के नीचे आ गया। शिक्षा काल में उसने मनोविज्ञान, दर्शन और समाज शास्त्र का अध्ययन किया। किन्तु उसे व्यवसायिक रूप में डाक्टरी का अध्ययन करना था। वह डाक्टर हो गया और उसने १८७८ ई० में आँख के विशेषज्ञ डाक्टर के रूप में वीआना में अपना कार्य आरम्भ किया। किन्तु उसे अपने रोगी के सामूहिक व्यक्तित्व के अध्ययन की ओर बड़ी रुचि थी। और शीघ्र ही वह सम्पूर्ण व्यक्तित्व का डाक्टर हो गया। वह नाड़ी तथा मानस रोगों के चिकित्सक के रूप में प्रसिद्ध हो गया। और बहुत दूर दूर से उसके पास रोगी आने लगे। एडलर, फ्राइड का कभी शिष्य नहीं रहा किन्तु उसके काल में फ्राइड के विचार प्रत्येक व्यक्ति का

ध्यान आकर्षित कर रहे थे। इसलिए १९०२ में वह उसकी विवाद समिति में सम्मिलित हुआ और कुछ काल पश्चात् उसे फ्राइड की पत्रिका के कर्मचारियों में सम्मिलित कर लिया गया, किन्तु वह फ्राइड के केन्द्रीय सिद्धान्त 'काम प्रवृत्ति ही समस्त मानवी क्रियाओं का मूल है', के लिए वचनबद्ध नहीं था। १९११ में मतभेद बढ़ गया। फ्राइड ने अपनी विवाद समिति के प्रत्येक सदस्य से यह मांग की कि वे बिना किसी शर्त के उसके उपरोक्त सिद्धान्त को स्वीकार करें। एडलर इस मांग की पूर्ति के सर्वथा अयोग्य था। उसने इस समिति को छोड़ दिया। उसने अपनी एक समिति बनाई जिसका नाम उसने "स्वच्छन्द मानस विश्लेषण" रखा। १९१२ में उसने अपनी समिति का नाम बदल कर "वैयक्तिक मनोवैज्ञानिक समिति" रखा।

वैयक्तिक मनोविज्ञान का विषय अत्यन्त सरल था और इस की क्रियाविधि भी मानसविश्लेषण विधि से अत्यन्त सरल थी। इसके अतिरिक्त इसके संस्थापक का व्यक्तित्व आकर्षक, भाषण पटु और लेख स्पष्ट था। उसने संसार के भिन्न २ देशों से बड़ी संख्या में अनुयाई आकर्षित किये। उसने बैल्जियम, चैकोसैलोवाकिया, जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटिश, हॉलैंड, योगोसलेविया, आस्टरिया, स्विटज़रलैंड, स्कैंडिनेविया और अमेरिका में व्याख्यान दिए। उसने प्रचारक उत्साह और जोश से व्याख्यान दिये और श्रोताओं के हृदय पर गहरा प्रभाव डाला। १९३७ में अपने व्याख्यान के दौरे में प्रातः काल की सैर पर उसके दिल की गति रुक गई। यह आकस्मिक घटना २८ मई को एबरडीन के स्थान पर हुई और ऐसे व्यक्ति की जीवन लीला समाप्त हो गई जिस के जीवन का उद्देश्य मनुष्यों की सहायता करना, उनकी वृद्धि करना, उनका सहायक होना था और जो मनुष्यता का उत्साहक और उन्नति कारक था।

हम यहां वैयक्तिक मनोविज्ञान के मुख्य सिद्धान्त संक्षिप्त रूप में वर्णन करते हैं। मनुष्य निर्बल और असहाय रूप में पैदा हुआ है। क्रिया, इच्छा और प्रयत्न उसका जीवन हैं। मानवी जीवन की गति घाटे से पूर्ति की ओर, अभाव से सन्तोष की ओर, आत्मग्लानि और अरक्षता से आत्मगौरव तथा रक्षा की ओर है। मुख्य रूप से जीवन की तीन मांगें हैं—व्यवसाय, समाज और काम। प्रत्येक व्यक्ति इन तीन मांगों को विशिष्ट रूप से पूर्ण करता है। इसी रूप को ही उसके जीवन की पद्धति कहते हैं। जीवन पद्धति या वैयक्तिक होती है या सामाजिक। प्रथम व्यर्थ है और दूसरी सच्ची तथा उपयोगी है। वैयक्तिक मनोविज्ञान की दृष्टि में वास्तविक मनुष्य वही है जो सामाजिक है। सामाजिक हित वैयक्तिक मनोविज्ञान का प्रमुख सिद्धान्त है। अन्तिम पुस्तक जो एडलर ने लिखी उसने उसका नाम, "सामाजिक हित: मनुष्यता के लिये चुनौती" रखा। वैयक्तिक मनोविज्ञान की दृष्टि से संसार का बचाव सामाजिक हित ही में है। दूसरा सिद्धान्त यह कि जीवन शैली या तो साहसपूर्ण होती है या भीरू। जीवन की तीन मांगों की पूर्ति में असफलता का कारण या तो सामाजिक रुचि का अभाव होता है या साहस और आत्मविश्वास का अभाव अथवा दोनों का अभाव। साहस वैयक्तिक मनोविज्ञान का दूसरा प्रमुख सिद्धान्त है।

जीवन की पद्धति बाल्यकाल में बनती है। अतः बाल्यकाल मनुष्य जीवन का अत्यन्त आवश्यक भाग है। शिक्षा का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति को साहसी और सामाजिक हितचिन्तक बनाना है। हम एडलर महाशय के आभारी हैं कि उसने हमें "बालक मार्ग प्रदर्शन औषधालय" का विचार दिया है जिसे सब जातियों ने स्वीकार कर लिया है। हम एडलर महाशय के इसलिए भी आभारी हैं कि उसने "आत्म हीनता"

कॉम्पलेक्स का अनुसन्धान किया। एडलर का नाम इतिहास में मानवजाति के महान शिक्षक के रूप में लिखा जायेगा।

एडलर की प्रसिद्ध पुस्तकें ये हैं :—

1. The Nervous Constitution.
2. The Science of Living.
3. What life should mean to you.
4. Individual Psychology.
5. Social Interest : A Challenge to Mankind.

विलियम मैकडूगल

विलियम मैकडूगल एक अंग्रेज़ मनोवैज्ञानिक था। इसने अपने व्यवसायिक जीवन का आवश्यक भाग अमेरिका में व्यतीत किया। वह १८७१ ई० में लंकाशायर में उत्पन्न हुआ। उसने मांचिस्टर के क्वीन्ज़ कालेज और कैम्ब्रेज यूनिवर्सिटी में शिक्षा पाई। उसने सैन्ट टॉमस हस्पताल लन्दन में डाक्टरी की शिक्षा पाई। किन्तु उसने डाक्टर के रूप में काम न किया। आरम्भिक आयु से ही उसे मनोविज्ञान के अध्ययन की ओर रुचि थी। शीघ्र ही वह मनोवैज्ञानिक बन गया। और यूनिवर्सिटी कालेज लन्दन में मनोविज्ञान का अध्यापक नियुक्त हुआ। और कुछ काल पश्चात् आक्सफोर्ड के मानसिक विज्ञान का रीडर नियुक्त हो गया। इसकी मनुष्य के मन के अध्ययन की नई पहुंच ने इसे प्रसिद्ध कर दिया। १९२० में उसने हार्वर्ड यूनिवर्सिटी अमेरिका में मनोविज्ञान का प्रोफेसर होने के लिये इंगलैंड को छोड़ दिया। यहां सात वर्षों के उद्योग पूर्ण कार्य के पश्चात् वह ड्यूक यूनिवर्सिटी में चला गया। उसने नवम्बर १९३८

में ६७ वर्ष की आयु में दैनिक कार्य में संलग्न अवस्था में संसार को त्याग दिया।

मैक्डूगल का मनुष्य की मानसिक क्रिया पर लिखा हुआ प्रस्ताव मानसिक क्रिया के सभी पक्षों पर प्रकाश डालने के लिए पर्याप्त है। मनुष्य के व्यक्तित्व के रूप, वृद्धि और विकास के सम्बन्ध में उसके अन्तिम निर्णय "मनुष्य की शक्तियां" नामक पुस्तक में दिये हुए हैं, जो १६३२ में प्रकाशित हुई थीं। एक प्रौढ़ मनुष्य का विश्लेषण पांच स्तम्भों पर निर्भर है। प्राकृतिक प्रवृत्तियां, उद्वेग, स्वभाव, चरित्र और बुद्धि। बुद्धिमत्ता, मौलिक बुद्धि तथा प्राप्त अनुभव और ज्ञान के संयोग का नाम है। प्रवृत्ति मन के सम्पूर्ण संगठन की कार्य सम्बन्धी एकाई है और यह वह शक्ति है कि जब यह उत्तेजित हो जाती है तो एक क्रियाशील प्रवृत्ति को जन्म देती है यह क्रिया शक्ति किसी उद्देश्य की ओर प्रेरणा करती है। मनुष्य की १८ जन्मजात प्रवृत्तियां हैं। उदाहरण-तया आर्थिक प्रवृत्ति, विवाह करना, जिज्ञासा, आराम, विश्राम, नींद। आजन्म प्रवृत्तियां हमारे मानसिक जीवन की प्रारम्भिक नींव हैं। वे आगे ले जाने को ऐसी शक्तियों की उत्पादक हैं जो हमारे साधारण कार्यों से लेकर कठिन कार्य्यों तक में प्रकट होती हैं। मनुष्य अपनी प्रवृत्तियों की दया पर नहीं है। वह अपनी बुद्धि के द्वारा, जिसका लक्षण मैकडूगल भूत के अनुभवों को सम्मुख रख कर सहज प्रवृत्तियों में सुधार करने की शक्ति" करता है, अपनी इन प्रवृत्तियों में सुधार करके उनका मार्ग प्रदर्शन कर सकता है।

प्रवृत्तियां, उद्वेग, स्वभाव, और बुद्धि हमारे प्राकृतिक उपहार हैं। परिस्थितियां इन पर प्रभाव डालती हैं और चरित्र तथा बुद्धिमत्ता को पैदा करती हैं। चरित्र और बुद्धिमत्ता

प्राप्त की जा सकती हैं। चरित्र प्रवृत्तियों को भावों में संस्थापन करने का नाम है। भाव (किसी व्यक्ति के लिए प्रेम) उन संस्थापित प्रवृत्तियों की संवेगात्मक पद्धति का नाम है जो किसी वस्तु सम्बन्धी विचारों पर केन्द्रित है। जब भाव, जिन में धार्मिक भाव और आत्मिक सम्मान भाव भी सम्मिलित हैं, बन जाते हैं तो मन एक पद्धति और एक प्रबन्धित संस्था के रूप में कार्य करना आरम्भ कर देता है। इसी प्रबन्धित संस्था का नाम चरित्र है। चरित्र प्रवृत्तियों, उद्वेग, स्वभाव और बुद्धिमता पर निर्भर है जो अनुभवों से वृद्धि पाती रहती है।

मैक्डूगल फ्राइड द्वारा अनुसन्धान किये अचेतमन और उसकी भिन्न भिन्न यंत्र रचनाओं के अस्तित्व को स्वीकार करता है। किन्तु वह फ्राइड सिद्धान्त का जिसका केन्द्र सर्वव्यापी काम सिद्धान्त है, विरोधी है। क्रिस्टल गेज़िंग और औटोमैटिज्म में भी अपनी रुचि का प्रकाश करता है।

उसकी मुख्य पुस्तकें ये हैं :—

1. Body and Mind.
2. Character and the Conduct of Life.
3. The Energies of men.
4. Ethics and some Modern Problems.
5. Introduction to Social Psychology.
6. Outline of Psychology.
7. Outline of Abnormal Psychology.

GLOSSARY
(शब्द कोश)

Acquisitive urge	संचय प्रवृत्ति
Curiosity-urge	जिज्ञासा प्रवृत्ति
Constructive urge	निर्माणता
Complex	कॉम्पलैक्स
Church	सम्प्रदाय
Economic urge	आर्थिक प्रवृत्ति
Habit	आदत
Maternal urge	शिशुरक्षण प्रवृत्ति
Morality	धर्म
Urge to fight	युयुत्सा प्रवृत्ति
Urge to escape	पलायन
Urge to appeal	प्रार्थना प्रवृत्ति
Urge to palate	जिह्वा स्वाद प्रवृत्ति
Religion	मजहब
Reproductive urge	उत्पादन प्रवृत्ति
Sex urge	काम प्रवृत्ति
Sentiment	भाव
Self-assertion	प्रभुता प्रवृत्ति
Self-submission	आत्म नमन प्रवृत्ति
Social urge	सामूहिकता अथवा सामाजिकता प्रवृत्ति